







॥ ॐ ॥ ॐ नमो वागीश्वर्ये ॥ ॐ ॥

# श्री गोवर्द्धन-अभिनन्दन-ग्रन्थ

— श्री सुविम्वरि नागरी मन्त्रालय

दीपनलेख

शुविम्वरि नागरी मन्त्रालय ६६५

दीपनलेख

जयन्ति त सुहृत्विभो रसादिना बर्षावसा ।

नास्ति तेषां यज्ञः वाये जगन्मरणमदम् ॥

“अर्चुं हरिः”

सन् १९६६ —

साहित्यालयपुर बाणेश्वरपुर

श्री सत्यनाभरण प्रसाद शर्मा

साहित्यपुरिषदस्ये ।





श्री सरस्वत्यै नमः

## द्वितीय प्रकरण

१—निबन्धा	...
२—श्रीन-स्मातं-पौराण-देवता-धर्मसं:	...
३—गुह्य-स्वरूप-विरेकः	...
४—साहित्यस्य सव्युत्पत्ति शास्त्रत्व-समर्थनम्	...
५—गीता-शास्त्र-सारः	...
६—संस्कृत-समुन्नति-साधनानि	...
७—संस्कृत-साहित्य पर एक दृष्टि	...
८—साहित्य और उसकी गति-विधि	...
९—कुछ भाषा के शब्द और उनकी आधार-शिला	...
१०—संस्कृत-साहित्य का महत्त्व	...
११—शिक्षा का महत्त्व और भारत	...
१२—प्राचीन और आधुनिक संस्कृति	...
१३—कालिदास और प्रकृति	...

## तृतीय प्रकरण

१—स्नातक-परिचय	...	२०
२—सम्मनियं	...	२१५
३—श्रीराजस्थान संस्कृत-विद्यालय का सक्षित इतिहास	...	२१७







# प्राक्थन

'उत्तमा भात्मना ख्याता.' संस्कृत को एक लोकोक्ति है। इस विशाल सृष्टि प्रत्येक प्राणी प्रगति पथ पर अग्रसर होने की अत्यधिक चेष्टा किया करता है। उसके जीवन एक लक्ष्य बन जाता है प्रगति करना, और यह प्रगति के लिये इतना अत्यधिक लालायित होता जाता है कि इसके लिए अपने पिता, मामा, सख्त, मित्र एवं प्रिय सम्बन्धी आदि की प्राप्ति करने की भी अत्यधिक चेष्टा करता है। किन्तु कतिपय जन्मना सिंह प्रकृतिक ऐसे महा पुरुष भी होते हैं, जो प्रगति के लिए किसी की सहायता भी अपेक्षित नहीं समझते। उनके लिए ही उक्त लोकोक्ति है।

हमारे इस 'अभिनन्दन ग्रन्थ' के शरित नायक पूज्य पण्डित जी पर यह उक्ति रूप्य शरितार्थ हुई है। पूज्य पण्डित जी का यश जो दिग् दिग्गन्त पैला हुआ है, इसमें दूसरे पुरुष नामधारी की सहायता नहीं है। यह समस्त पण्डित जी के ही विशाल भुजदण्डों उपार्जित किया हुआ है।

ऐसे महापुरुष का क्यों न अभिनन्दन किया जाय, जिसके जीवन का प्रत्येक अनुकरणीय हो, जिसका जीवन बालकों का शरित-निर्माता, युवकों का पथ-प्रदर्शक वृद्धों का अभिनन्दनीय हो, जिसने कालधर्म के अनुसार हास की ओर द्रुतगति से हुई कल्याणमयी गीर्वाणवाणी की प्राचीन महर्षियों द्वारा प्रदर्शित भावुकपद्धति से एक लक्ष्यको स्थापित कर अतिदाय सेवा की हो? जिस समय वे जीने इस विद्यालय को किया था, उस समय उद्गम पर्यन्त संकल्पमात्र शुद्ध उच्चारण करनेवाला भूदेव दृष्टिगोचर होता था। श्री राजस्थान संस्कृत-विद्यालय ने संकल्पों जैसे एयोग्य छात्र तैयार किए हैं, देशवाणी का अध्ययन कर प्राचीन भारतीय संस्कृतिको अधुएण रखने की प्रतिज्ञा की है। इस विद्यालय में छात्रों की वेशभूषा, वेदमन्त्रोंका समपुर उच्चारण, अग्निहोत्र की लगन्धित पटली, उन पवित्र आभूषणों की वाद दिलाते हैं, जिनमें निवास कर प्राचीन कालमें दर्शन महर्षियों ने विश्व को अध्यात्म विद्या जैसी देन दी थी।

उपर्युक्त बात को ध्यान में रख कर विद्यालय के छात्र-स्नातक, एवं नागरिकों भोमान् वे जी को अभिनन्दित करने का विचार किया। हमी पुनीत अवसर पर पण्डितजी के पावन-पाणि पङ्क्तियों में 'श्री गोवर्धन-अभिनन्दन ग्रन्थ' समर्पण करने का श्लाघनीय विचार किया। ग्रन्थ के सम्पादन का भार उन्होंने मेरे निबन्ध कर्तव्यों पर तथा मुझे सम्बल देने के लिए एक धन्य-व्यवस्थापक समर्पित भी बना दो। यद्यपि मैं विशाल ग्रन्थ का सम्पादन करने की क्षमता एवं योग्यता नहीं रखता, परन्तु गुरुजनों एवं

इतने विशाल ग्रन्थ का सङ्कलन केवल ८ मास में हुआ; उसमें भी सप्ताहों तक रुक-थक इसका कार्य रूका रहा। जिन-जिन दिवसों के लेख, शुभकामना, ब्लाक आदि अंशित थे, वे छद्म प्रान्तों में फँसे हुए होने के कारण उपयोगी सामग्री शीघ्र न भेज सके। साथ-साथ कई एक लेखकों ने भी मन्थर गति से काम लिया। फिर भी उनकी सहायता से यह ग्रन्थ इस रूप में आप लोगों के कर कमलों में विराजमान है।

इस ग्रन्थ में जिन विद्वानों की रचनाएँ हैं, वे तो धन्यवादाहँ हैं ही, परन्तु पूज्य परित्त जी के सुपुत्र द्वय पं० उमाशङ्कर जी आयुर्वेदाचार्य एवं साहित्यालङ्कार पं० परमानन्द शास्त्री विशेष बधाई के पात्र हैं; जिन्होंने सामग्री के क्रम-विन्यास में मुझे अत्यधिक सहायता दी है। श्रीमालचन्द्र वमां विशारद को भी हार्दिक धन्यवाद है, जिन्होंने कतिपय लेखों की प्रतिरक्ति करने में विशेष सहायता दी है।

ग्रन्थ जैसा भी बन सका है, वैसा आपके सामने है। इसके गुण-दोषों की परीक्षा का भार आप पर है; परन्तु मेरी अयोग्यता एवं समयाल्पता को ध्यान में रखते हुए आशा है, आप दोषों पर ध्यान नहीं देंगे। मानव-कृति में दोष रहना स्वाभाविक है, उसकी कोई भी कृति निर्दोष नहीं होती। अस्तु।

विद्वानों से बिनम्र प्रार्थना है कि वे प्रेसमैनों की असावधानी से अथवा अन्य कारणों से रही हुई अशुद्धियों की सूचना अवश्य दें, ताकि अगले संस्करण में उनका संशोधन किया जा सके।

तारानगर  
पौ० कृ० २  
२००६

}

बिनम्र :—  
सत्यनारायण प्रसाद

## समर्पण

हे महामहिम आचार्य्य !

पञ्चाशद्वर्षीय देशसेवाओं के उपलक्ष्य में आपके पावन पाणिपङ्क्तियों में श्रद्धावनत अकिञ्चनों की यह भाष-कुमुमाञ्जलि सादर समर्पित है ।

देव !

इसे सानुमह महण कर हमें आशीर्वाद दीजिए, हम भी आपके पद-चिह्नों पर चलते हुए देश-सेवा के पवित्र वन पर अग्रसर हो सकें ।

तारानगर  
दि० रामनवमी, १९०७

इन हैं श्रद्धे—

मित्र, शिष्य, प्रशिष्य, स्नातक एवं  
सुरभारती के अन्य सेवक ।

# ग्रन्थ षडक्षरस्थापिका समिति

- १ पं० गोपालचन्द्र जी शास्त्री, अध्यक्ष क.ग.पुरिया माह्वेद विद्यालय,  
जगद्व ।
- २ के० के० श्रीनिवासानार्य वैद्यपञ्चानन, अध्यक्ष भारद्वाज कार्मेमी,  
ज्ञानाक्षर ।
- ३ पं० हनुमत्प्रसाद शास्त्री साहित्यायुर्वेदाचार्य, श्री सनातन आयुर्वेद  
विद्यालय, बीकानेर ।
- ४ पं० चदरी प्रसाद जी आचार्य, अध्यक्ष ऋषिगुल्ल प्रज्ञाचर्याश्रम, चूरु ।
- ५ आचार्य उमाशंकर वैद्य, अध्यक्ष सेवासमिति दातड्य औषधालय,  
परदारशहर ।
- ६ साहित्यालङ्कार पं० परमानन्द शास्त्री 'निर्भय', तारानगर ।
- ७ पं० नारायणदत्त शास्त्री 'प्रभाकर', तारानगर ।
- ८ मालचन्द्र वर्मा 'विशारद', बीकानेर ।
- ९ साहित्यालङ्कार सत्यनारायण प्रसाद शास्त्री, साहित्यायुर्वेदाचार्य,  
राजगढ़ ।

# श्री गोवर्द्धन अभिनन्दन-ग्रन्थ

संगल=गीत

( १ )

विद्युध - बुधशिरः सुन्दरमधुकर - चुम्बितपादसरोजा ।  
जित - युगभूधर - शृङ्गमनोरम - पीनोग्रत - सदुरोजा ॥

( २ )

पीवरतुङ्गे मंजुनितम्बे सश्वित - काश्वन - काश्वी ।  
करसरसिजघृत - जपननिवेशित-कण्डविकाल्पविपश्वी ॥

( ३ )

गलजितकम्बुः कपजितजम्बुः सान्द्रनवाम्बुद शोभा ।  
कान्तसुकोमल - कुश्वितकुन्तल - चुम्बनजानुविलोमा ॥

( ४ )

नाभिविनिन्दित - सन्ततशृङ्गित - देवनदीधमिरोचिः ।  
जानूहृत - करि - करकर - रुदलीस्तम्बमनोरमरोचिः ॥

( ५ )

अनुपमवदना निरुपमनयना धृजितमन्मथवापा ।  
तिलसुमनासा वरतनुमासा मुधितहेमकटापा ॥

( ६ )

सल्लोटतटाजित - कलहृविरहित - शीतलदीधितिवग्दा ।  
जनगणलोचनमोहन - काश्वनकुण्डल - मण्डितगग्दा ॥

( ७ )

अधरषारहत - नूतनविहमित - विंशुचक्षुःकुम्बान्तिः ।  
बलपबलयिता ललितसुजलता मौलिकदन्तधन्तिः ॥

( ८ )

दुधगणमान्वा कमलकन्द्या वामिनुरोचिदंदा ।

# शुभाभिर्शांसतम्

आचार्य "चन्द्रमौलि" धीमान्

जीवनं सफलमितम् आदर्शभूतं यस्य हे !  
तस्य जननिघटे कथन्नो जायतामभिनन्दनम् ।  
शारदा संराधने विद्याप्रधारे पाठने ।  
भासीत्प्रवृत्तिर्मानमी तस्यैव स्यादभिनन्दनम् ॥१॥

स्नातकाः देशान्तरेषु कार्यव्याप्तमानसाः ।  
यस्य विदुषश्चात्मजा इव तस्य स्यादभिनन्दनम् ।  
भारतीय सुसंस्कृतेरादर्शभूतो विमदः ।  
दृश्यते बुध तद्वज्रस्त्येह स्यादभिनन्दनम् ॥२॥

जनयतात् जननी यथा गोवर्धनी जातः सुधीः ।  
धुरिधन्वरन्नस्यामितं दिविगीयतेऽप्यभिनन्दनम् ॥  
यस्यगुणगरिमाभिता अन्ते वसन्तो मेधया ।  
वर्चसा ख्याता जगत्यां तस्य स्यादभिनन्दनम् ॥३॥

अभिमानभूमिर्भारतस्य पण्डितो गोवर्धनः ।  
दिग्दिगन्तेष्वे तु प्रसरं गीयतामभिनन्दनम् ॥  
जीवतात् शरदांशतं श्री बुद्धिमच्चूडामणिः ।  
श्रीचन्द्रमौलि कवीश्वरेण गीयतामभिनन्दनम् ॥४॥

# ॥ गुरु-दरवार, भजन लावनी गान् ॥

दोहा—जुग जुग में जीवित रहें गुरु ब्रह्मा दरवार ।

विद्या वेद पुराण धन जहें पावें फल चार ॥१॥

विद्या गुण भंडार, आपकी महिमा है भारी ॥टिका॥

सिद्धान्त चौक—तारानगर निवाम हरि के दास बड़े उपकारी २

वे पण्डित जी महाराज गोवर्धनधारी ॥

तिक्ष्ण बुद्धि विशाल पढ़ावे बाल शीलव्रतचारी २

वे गुरु जी का दरवार सदा गुलकारी ॥

झाड़—चुन चुन के खरपी ल्यावे, फिर सबकुँ आप जीमावे ।

पुत्र के समान पढ़ावे, मुजन की सेवा भावे ॥

संगीत—मैं भी रहा एक मास अच्छी विद्या पाई है ।

खान पान अन्न वस्त्र जुगती लगाई है ॥

घर से रुपया दिया पुस्तक भी मंगाई है ।

सच्चे प्रेम नेम मुझे भागवत पढ़ाई है जी ॥

गुरु जी उत्तम उपकारी, विद्या गुण भंडार ० ॥१॥

सिद्धान्त चौक—करते विद्या दान मुजन सन्मान दया में राता २

गुरु समान कुण और मात पितु भ्राता ॥

बाणी विमल विशाल प्रभु के लाल हाथ के दाता २

मैं करता मन में याद हिया हर्पाता ॥

झाड़—नहीं लेवत आप पढ़ाई, दिल ऐसी भक्ति भाई ।

गुरुजी कीनी बहुत भलाई, इक मुखसे सकूँ न गाई ॥

संगीत—ब्राह्मणों के बाल जिन प्रेम से पढ़ाये है ।

ब्रह्म का समाज देख हिये हर्पाये हैं ॥

मुजन की सेवा माँही सदा मन लाये हैं ।

उत्तम लक्षण आप सब ही के मन भाये हैं जी ॥

गुरु जी गंगाजलकारी, विद्या के भंडार ० ॥२॥

सिद्धान्त चौक—सदा धर्म का काम गुरु का धाम मोक्ष का द्वारा २

वे गुरु वेद पुराण धन जहें पावें फल चार ॥



झाड़—वे सदा प्रभाते न्हाते, फिर मंत्र घड़ फं गाते ।

संध्या बंदन चित लाते, ता पीछे ग्रन्थ पढ़ाते ॥

संगीत—आठ पहर साठ घड़ी वेद का विहार है ।

देस की कुचाली सारी विगड़ी सुधार है ॥

महर्षी सन्तान जाके सदा एही कार है ।

गुरुजी का धाम जाकी महिमा अपार है जी ।

गुरुजी सच्चेतपधारी, विद्या के भण्डार ॥३॥

सिद्धान्त चोक—गावे कान्हिराम सिखरपर धाम नगर गुलकारी २

जहाँ बसते श्री गुरुदेव भगत नर-नारी ।

करें हरि, गुण गान लगावें ध्यान हिये हरोयांली २

जहाँ शीत घाम नहीं रोग, भक्ति उजियाली ।

झाड़—जहाँ शंकर परमानन्दा, नहीं जन्म-मरणका फन्दा ।

वं भजते बालमुकुन्दा, नित गावत गुरु गोविन्दा ॥

संगीत—बोलो राम जी हरे दुविधा दूर करे ।

बोलो नारायण हरे सारे कारज सरे ॥

बोलो ठाकुर जी हरे वेड़ा पार करे ।

बोलो प्रेम से हरे सारे विघन टरे जी ॥

गुरु के चरणूं बलिहारी विद्या के ० ॥४॥

दोहा—गुरुजी के दरवार में सब बस्तु का ठाठ ।

रोटां रा कोठा भस्त्रा निर्मल जल का माट ॥१॥

कवित्त

पुन पुन ल्याये धान सत्र ही को राख्यो मान ब्राह्मणों के बाल आप प्रेम से पढ़ाये हैं ।  
मेरो मुख एक याते फाट्टे से प्रशंसा करूं मागर जेते गुण नाही गागर में समाये हैं ॥  
गोबर्द्धन जी शास्त्री एतो उत्तम गुनीश एक मुजन की सेवा माही सदा प्रव लाये हैं ।  
दरपकी है बात आज तुम्हो दे ममाज राज शीघ्र पार थाक पुण्य भंड को चढ़ाये हैं ॥१॥



परिण नाटक —

भाषासंपाद—पण्डित राज गोबर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री, महोपदेसक  
( छात्र-चिन्तन के श्रेणी में )



श्रीयुक्त ब्राह्मण-कुल-कमल-दिवाकर संस्कृत-प्राण  
वैयाकरण-केसरी महोपदेशक

पं० गोवर्द्धनप्रसाद जी शास्त्री

—का—

संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त

लेखक :—

चन्द्रनागयण शर्मा, पी० काम ; वित्ताद  
पाटनी पैलेस, कलकत्ता ।

जैस्य मुझे "श्री गोवर्द्धन-अभिनन्दन-ग्रन्थ" के यशस्वी सम्पादक श्री  
कविराज सत्यनारायण प्रसाद शास्त्री माहिलायुर्वेदाचार्य का  
अद्वैत पं०जीके जीवन-वृत्तान्त को लिखने का मिला ; तब मस्तिष्क में एक वि  
सिहरन हो उठी, हृदय आनन्द के अपार सागर के अपूर्व प्रवाह में निमग्न  
गया और होने लगा आत्मा में आनन्द का एक विशेष स्तन्दन ।

अहा ! आज यषों से नग्न-घृणित परित्र-चित्रण से उजाड़ित  
कलङ्ककालिमा महापुरुष के जीवन-वृत्तान्त लिखने से धुल जायगी !

युग-युगान्तर से हृदय में विद्यमान अन्धकार भी इस प्रकाण्ड विद्वान्  
प्रबोध-प्रकारा से दूर हो जायेगा और सुन्दे प्राप्ति होगी अतः यरा एवं अतः  
सुपमाका साग्राड्य !

अद्वैत पं० गोवर्द्धन प्रसादजी शास्त्री महोपदेशक हम विराट् १।  
ग्रन्थ के सर्वांगी धर्मोद्धारक, विद्याप्रचारक एवं बम्बट विद्वान् हैं ।  
जीवन प्रत्येक विद्याप्यसनी, सञ्जन, आदरा गुरु एवं देश-धर्म तथा जानिमेव  
लिए अनुकरणीय है । आपके अध्यवसाय एवं उन्मात्पूर्ण जीवन के  
का स्मरण कर रोमाञ्च हो उठता है, अत्यधिक विस्मय होता है और हृदय

आपका जन्म सं० १९३८ विक्रम माघ शुद्ध प्रतिपदा शुक्रवार को प्रति  
ब्राह्मण-वंश में हुआ। आपकी जन्मभूमि यही तारानगर है, जिसमें कि आपका  
अपूर्व अभिनन्दन-समारोह मनाया जायगा। आपके पूज्य पिता पं० देवीदत्त  
शर्मा प्रसिद्ध विद्वान एवं प्रख्यात ज्योतिषी थे। आपकी माता श्रीमती तारा देवी  
भी सुयोग्य, सन्तति-पालन-प्रवीण एवं धर्मात्मा थीं। आप के वंश में ज्योतिषी  
तो बहुत अच्छे-अच्छे हो गए हैं। कहते हैं आपके ३-४ पीढ़ी पूर्व पं० घासोराम  
जी ज्योतिषी तो किसी की जन्मपत्री आदि बनाते समय पहले ही कागज पर लिख  
दिया करते थे कि यह व्यक्ति दक्षिणा-रूप में मुझे अमुक वस्तु देगा। आपकी  
ज्योतिष-विद्या के चमत्कार से प्रभावित होकर वीकानेरके भूतपूर्व महाराज  
गजसिंह जी ने आपको कितनी ही भूमि पारितोषिक-स्वरूप प्रदान की थी।  
आपके पितामह श्रीमान् पं० गणेशदास जी भी बड़े सरल, सौम्य एवं भगवद्भक्त थे।

आपका शैशव बड़े आनन्द के साथ व्यतीत हुआ है। आप बाल्यकाल  
में बहुत ही चञ्चल प्रकृति के थे। आप शैशव में अपने दादा जी के पास रह  
रहा करते थे; वे भगवद्भक्त थे ही, अतः आपको भी भगवद्विषयक उपदेश एवं  
क्याएँ बड़े प्रेम से सुनाया करते थे। फलस्वरूप आप सनातन-धर्म के प्रवर्त  
पक्षपाती एवं भगवान् शङ्कर के अनन्य भक्त हैं। 'नवीने भावने  
लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्' यह उक्ति आप पर पूर्ण रूपसे चरितार्थ हुई है।

आपका अध्ययन-काल तो बड़ा जीवट एवं उत्साहपूर्ण तथा विचित्र पठ-  
नार्थों से युक्त था। आपने ८ वर्ष की अवस्था में ही विशिष्ट अध्ययन की सुगम  
आशा को ध्यान में रखकर गृह त्याग कर दिया था। इससे पहले आपने धर्म  
बोध, पत्नी पहाड़ा, मामूली हिस्साय एवं देवताओं की स्तुतियाँ कण्ठाम्भ कर ली थीं।  
गदगमे पहले आप मिरमा गए और गजाथो संस्कृत पाठशाला के तत्कालीन अध्या-  
पक श्रीमान् पं० ऋषिराम जी के पास अध्ययन करने लगे। पं० ऋषिरामजी  
बुद्ध समय बाद भट्टिण्डा चले गए और उनके साथ आप भी भट्टिण्डा चले गए।  
धर्म और बड़े उत्साह एवं संलग्नता के साथ अध्ययन करने लगे। आपके  
गुरुजी आपके प्रतिभा में ईर्ष्या करने लगे और एक दिन उन्होंने स्वतन्त्र  
के समय सतलुज में आपको धक्का दे दिया। परन्तु भाग्यवश यही कबहुँ धोरे  
हुँ परन्तु धर्म के प्रति आपकी वाद निश्चलता। आप पं०जी के पास  
आपके गुरुजी के लिए करने लगे कि मैं तो अब यहाँ नहीं रहूँगा। पं०जी

आपको बहुत कुछ समझाया, सहपाठियों को ताड़ना भी दी; परन्तु आप नहीं ने और फोरोजपुर छावनी चले गए। वहाँ से कुछ दिन बाद ही लौट आए र सिरमा में पं० कृष्णानन्द जी के पास तत्परता से अध्ययन करने लगे। इसी च आपका विवाह भी हो गया, परन्तु इसका आपकी शिक्षा पर कोई दुष्प्रभाव न पड़ा।

उसके बाद आपने बनारस जाने की योजना बनाई। पैसा न होने के कारण आपने पैदल बनारस जाने की ठान ली। आपने दो एक सहपाठियों को साथ लिया और बनारस की ओर चल पड़े।

दो दिन चलते चलते आप देहली पहुँचे और 'भण्डे वाली' पाठशाला में जाकर विश्राम किया। वहाँ के छात्र एवं अध्यापकों ने वहाँ रहने का आम्रह किया, परन्तु आपके हृदय में तो काशी जाने की धुन थी, आप वहाँ कैसे रह सकते ! निदान काशी की ओर चल पड़े। रास्ते में कहीं गाड़ीपर चढ़ लेते, कहीं पैदल चलते, इस तरह करते बनारस पहुँचे। वहाँ आप कई पण्डितों से मिले। काशी के तत्कालीन प्रसिद्ध विद्वान् श्री गोविन्द शास्त्री के पास आपने ५ वर्ष तक पाठ्याकरण, काव्य, न्याय, धर्मशास्त्र, कर्मकाण्ड, ज्योतिष एवं पुराणेतिहास का अध्ययन किया। आपने अध्ययन के साथ साथ सभा सोसाइटियों में भी जाना आना आरम्भ कर दिया। अपने सहाध्यायीवर्ग से शास्त्रार्थ भी करते थे, इसी के फलस्वरूप आप आगे चल कर 'महोपदेशक' एवं 'सफल शास्त्रार्थी' कहलाए। शास्त्रों का अध्ययन कर चुकने पर आप १८ वर्ष की अवस्था में गुरुदेव की आज्ञा लेकर तारानगर आ गए। घर आते समय श्री गोविन्द शास्त्री ने आपको आशीर्वाद दिया था कि "यही विद्या तुम्हारे लिए, कल्पवृक्ष हो जायगी" और हुआ भी ऐसा ही।

## कार्यक्षेत्र और सेवाकार्य

सं० १९५६ में बनारस से विद्याध्ययन कर लौट आने के बाद तारानगर निवासी श्रीमान् सेठ हीरालाल जी मन्त्री, बलदेवदास जी खेभाणो, हरिदास जी आचार्य आदि तात्कालिक गण्यमान्य व्यक्तियों के विशेष आम्रह करने पर आपने श्री राजस्थान संस्कृत विद्यालय की स्थापना की। उस समय राजगढ़ से टी.कम. बंदूकों का तथा भादरा से त्रिभुवनराय लहारी मायेवा अपनी पाठशाला में

अतः आपने उस निमन्त्रण को अस्वीकृत कर दिया। श्री राजस्थान संस्कृत लिय की स्थापना के समय आपकी अवस्था केवल १८ वर्ष की थी। परन्तु; 'हि न घयः समीक्षयते' के अनुसार आपने वह कार्य कर दिखाया, जिससे तारानगर के इतिहास में एक नए अध्याय का आरम्भ हुआ। आपकी मर के सामने दैव को झुक जाना पड़ा।

जैसा कि सदैव होता है, इस शुभ कार्य को आगे बढ़ाने में भी बहुत आये, परन्तु आपकी कर्तव्यपरायणता सतत उत्साहशीलता के सामने ठहर न सके यहाँ के कई पण्डित नामधारी क्षुद्र जन्तुओं ने अज्ञानमदाक्रान्त हो कर को विध्वंस कर देने की कुचेष्टाएँ की, परन्तु आपके प्रभाव के सामने उन्हें हार पड़ी। जलोद्धत बादलों का कृत्रिम अन्धकार कर्मवीर सूर्य की प्रचण्ड किरणों के तेज को कथावशेष करने में न आज तक समर्थ हो सका है और न हो सकेगा।

आपने श्री राजस्थान विद्यालय में ही 'सनातनधर्म-सभा' की स्थापना की। इसके द्वारा आपकी अध्यक्षता में छात्रों को वाक्पटु बनाया जाता था। जनता ने इस सभा द्वारा अत्यधिक धार्मिक लाभ उठाया। सनातनधर्म एवं पौराणिक जटिल विषयों पर आपका बड़ा ही मार्मिक भाग हुआ करता था।

तारानगर का वर्तमान मिडिल स्कूल, जो आज तक नमालूम कितने ही छात्रों को सुयोग्य बना चुका है, आप ही की कृपा का फल है। आपने ही इसे प्राइमरी स्कूल से मिडिल स्कूल के रूप में परिणत करने की चेष्टा की।

इसके बाद आपने सनातनधर्म पुस्तकालय की स्थापना की, जिसने जनता की बहुत वर्षों तक सेवा की थी। यह पुस्तकालय विद्यालय के अन्तर्गत ही कई वर्षों तक रहा। आप जिस प्रकार की जनसेवा करने के इच्छुक थे, वैसी सेवा इसके द्वारा न होते देख आपने इसे विशाल रूप देना चाहा। और आपकी वही इच्छा नगर मध्यवर्ती इस विशाल सार्वजनिक पुस्तकालय के रूप में परिणत हुई। इस कार्य को करने में नगर के धनीमानी सज्जनों ने बहुत चेष्टा की थी। आज यह पुस्तकालय जनता की स्वामी सेवा कर रहा है।

केवल मनुष्यों के लिए ही शिक्षा का साधन जुटा देनेसे आपकी अन्तरात्मा संमत् न हुई; आपका ध्येय था तारानगर के स्त्री-पुरुष—उभय वर्ग—की शिक्षित एवं सदापात्री बनाना। आपने स्त्री-शिक्षा के विषय में कई एक व्याख्यान देकर स्त्रियों को सम और आकृष्ट किया। आपके भावनों से प्रभा-  
... १४४ ... मेठ नारायणदासजी मरावगी ने पन्थाओं के घटने के लिये

अपनी हवेली में स्थान दे दिया। उस समय आपकी शिष्या श्रीमती मंगल देवी ने उस कन्या पाठशाला की अध्यापिका होना स्वीकृत किया जो आपके स्थानीय डाक्टर श्री गुलजारी लाल जी की सुपुत्री थी। इस कार्य से प्रसन्न हो शिक्षा विभाग श्रीकानेर एवं ग्लोब मोसाष्टी कलकत्ता ने कन्या पाठशाला अपने हाथों में ले लिया। आज इसी कन्या पाठशाला में लगभग १५० शिक्षा प्राप्त कर रही हैं।

शिक्षा प्रचार द्वारा जनसेवा के माथ-साथ आपने अन्यान्य प्रकार से जनसेवा करने का निश्चय किया। आपकी इस महत्वाकांक्षा एवं जनसेवा आदर्श से प्रभावित होकर तात्कालिक नाजिम ने आपको "म्युनिसिपल बोर्ड" का मेम्बर चुना। आपने १८ वर्ष तक उक्त पद पर कार्य करते हुए ग्रामसेवा की। तारानगर का निकटवर्ती बूचावास नामक गाँव अग्निदेव की लपटों में भस्माभूत हो रहा था। उस समय आपने तारानगर के नवयुवकों को उस ग्रामसेवा में अपने सर्वस्व की बाजी लगा देने के लिए प्रोत्साहित किया। आप प्रेरणा से श्री हीरालाल चौधरी आदि नवयुवकों ने उस समय ग्रामीणों को अत्यधिक सहायता की। आप भी उस भयङ्कर अग्नि से उत्तम गाँव में जा नवयुवकों का उत्साह बढ़ाते रहे।

इस प्रकार जनसेवा के समस्त साधन जुटा देने के अनन्तर आपके हृदय जो पशुकल्याण की अटल भावना विद्यमान थी, उसे भी मृत रूप देने के लिये अकटिबद्ध हो गए। गोशाला स्थापित करने में आपकी बड़ी-बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। परन्तु आप घबड़ाये नहीं। लगातार ५ मास तक 'गोशाला की उपयोगिता' एवं 'गोसेवा के महत्त्व' पर आपके व्याख्यान हुए। गोशाला के लिए भूमि-प्रदानार्थ आपने श्री सोलाराम वैद को प्रेरित किया। स्थानीय साहूकारों के द्वारा चन्द्रा लिखाया गया और यह गोशाला स्थापित की गयी। गोशाला-स्थापन में श्री घालकनाथ जी स्वामी ने अत्यधिक सहायता दी थी। उन्होंने गोशाला के मन्वालय के लिए भी प्रतिज्ञा की थी।

आपने 'हरिकीर्तन मण्डल' एवं 'ब्राह्मण पञ्चायत महासभा' आदि संस्थाएँ हाल में ही स्थापित की हैं। इनके द्वारा भी तारानगरीय जनता की सेवा होनी है।



जंजीरें एक-एक करके टूट रही हैं। निहायत सुशी है कि भारत-माता है। हमारा हृदय दर्प से कूला नहीं मगाता। किन्तु अब जब हम स्वयं अविधायक हैं, यह दर्दनाक पत्थर के दिल को भी दहला देनेवाला खर क्यों? पारस्परिक कलह का शान्त आज क्यों फूँका जा रहा है? के खून का प्यासा मानव आज इस निष्पुरुता से अपनी नसल की इस फसल को क्यों घरघाद कर रहा है?

इन सब भगड़ों का कारण फेयल एक ही है और यह है शिक्षा का और अज्ञान की प्रचुरता।

जैसे तो लड़नेवालों के लिए लड़ने के अनेक बहाने हैं, किन्तु मोटा यह है कि लड़ाई द्वेष से पैदा होती है, द्वेष स्वार्थ से उत्पन्न होता है अज्ञान से। सब पूछो तो यह अज्ञान ही अन्धकार है। सब विपदाओं के यही बोता है। अतः उन्नति की लम्बी मंजिल तय करने की इच्छा र शिक्षा पा कर ही कार्य-क्षेत्र में आते हैं।

अज्ञान को समूल नष्ट करने का एक मात्र साधन शिक्षा ही है। ही यह सच्चा आत्म-बल प्राप्त होता है, जिसके आश्रय से विश्व-शान्ति की होती है। उपर्युक्त विचारों का अध्ययन करने पर हमें यह कहते किसी प्रकार संकोच नहीं होता कि देश के राष्ट्रिय उत्थान और नैतिक अभ्युदय के लिए की बड़ी आवश्यकता है। इसके बिना उन्नति की अभिलाषा करना एक मात्र है।

ज्ञान की निर्मल ज्योति शिक्षा से ही उत्पन्न होती है। यह ज्योति ही लोगोंका जीवन है। उस पर शैतान की छाया पड़ती है, जिसका फल मानवता लिए कभी हितकर नहीं हो सकता। यदि अज्ञान विष से भरा पात्र है तो जीवन सरसा देने वाला मधुकलश है। एक मारता है, दूसरा जिलाता है। इसी तो कहते हैं कि शिक्षा का पलड़ा भारी है। बहुत भारी है। स्वभाव से ही य वजनदार है। जीवन को सुख और शान्तिमय बनाने के लिए हमें इसी पाना होंगा।

शिक्षा ज्ञान पैदा करती है और ज्ञान हमें चिरंतन सत्य के दर्शन कराता है। यह संसार नाशवान् है, किन्तु यह सत्य सदा शाश्वत रहता है। कभी किस अवस्था में इसका लोप नहीं होता। यह प्रेम—भाव को दृढ़ करता है।

सच, मजाक की बात नहीं, अब थोड़ी देर के लिए आसमान की ओर आँ

आकर देखिये। यहां से दूर-बहुत दूर-क्षितिज के पास सूर्य धमक रहा है। उसकी  
कौनों फाँवर फल, फूल और पौधे पनप रहे हैं। इस पर भी कोई बुद्धिहीन प्राणी  
कानों आँवों को अपनी अंगुलियों से ढाँप कर यह कहे कि सूर्य है ही नहीं, तो  
कहने का कोई महत्त्व नहीं होगा।

इसी प्रकार जो शिक्षा की उपयोगिता को समझता हुआ भी उसके अनुकूल  
नहीं करता, वह स्वयं अपने लिए ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए खतरनाक  
। हमका संग खतरा से खाली नहीं है। उसकी उपस्थिति देश और समाज के  
के मावों अमंगल की सूचक है। शिक्षा में असीम परिवेश-शक्ति है। यह सूक्ष्म  
सूक्ष्म वस्तु के मर्म को समझ लेती है। यह विश्ववन्द्यत्व की भावनाओं को बढ़ा  
ती है। यह हमें सिखाती है कि यह सारा संसार एक ही पिता के तप का फल  
बराबर के सम्पूर्ण जीवों में उसी की आत्मा के दर्शन होते हैं। आत्मा और  
आत्मा एक है, इस गूढ़ रहस्य की खोज हमारी इस सर्वगुण-उजागरी शिक्षा  
द्वारा ही की गई है।

संसार के किसी भी अनुभवी गणितज्ञ से पूछिये कि एक और एक मिलने  
हैं? यह निःसंकोच उत्तर देगा कि एक और एक दो होते हैं। लेकिन हमारी  
की शिक्षा के चल पर पत्नी-पुत्री हमारी तत्त्वविद्या बढती है कि एक और एक,  
होता है। सुनकर आश्चर्य होता है, लेकिन समझ लेने पर आनन्द का पारा-बहार  
रहता।

वस्तुतः ईश्वर और हममें कोई मौलिक अन्तर नहीं है, बसल मात्रा और मात्र  
हमारी आत्मा पर हटा जाने के कारण हम उसे नहीं देख सकते। यदि हमें  
देखने की चेष्टा भी करते हैं तो मसादे के दण्ड की तरह हम संसार से हमें बच  
मक की बहुत शक्तें दिव्यार्थ देती है। परन्तु बचने की आँखें मुटु जामे पर  
की ताबीर सामने आ जाती है। इस वास्तविक शिक्षा के अर्थ को अर्थों  
समाप्त लेने पर अभी कोई किसी का अहित नहीं कर सकता।

धनुना के मुख्य तट पर एक दिन बरीले की सपन हटा के नें के अन्तर  
में बैठे हुए थे। प्रेम-प्रसंग चल रहा था। धरती की सतह राज के अर्थ  
हो रहे थे। गाने बाला शब्द तन्मय था। सुन्दर अन्तराली का अर्थ कल  
पर हटा रहा था। इसी बीच सुपके सुपके धरती के अन्तराल के  
दानों हाथ नरबरे की आँखों पर रख दिये। ए ओ के अन्तराल के अर्थ

राधा को जयाप देने का शौगान तो नहीं आया, लेकिन उनके हाथ जाने में ही छोले पड़ गये। फिर गुग्गुगगी हुई माधव की ओर मुड़ कर माधव तुम मुझे पौरा प्रेम करते हो ?

राधा ! प्रेम पैना ? मैं तो यह समझता हूँ कि तेरे और मेरे अन्तर नहीं। बात यहाँ पर समाप्त हुई। कृष्ण अपने अन्तमस्त गालों की को साथ लिए जंगल की ओर चल पड़े। फिर यद्द रात चली जाने पर वे थोर लौटे।

राधा को विनोद सूझा, भट अपने कमरे के काटक बन्द कर दिये। दरवाजा खटखटाया।

“कौन है” राधा ने भीतर से पूछा।

“मैं हूँ राधा” ! माधव ने धीरे से कहा।

आप चाहे जो हों, यहाँ से शीघ्र चले जाएँ, “मैं” के लिए यहाँ कोई नहीं है। राधा ने अनुशासन के स्वर में कहा। फटकार खाकर एक बार माधव चौंके, लेकिन चतुर थे न, शीघ्र बात को ताड़ गये और फिर हिम्मत करके खटखटाने लगे। कौन है ? भीतर से वही पूर्व परिचित ध्वनि आई।

‘तू है’ कृष्ण ने उत्तर दिया।

दरवाजा खुला और कृष्ण यह कहते हुए प्रविष्ट हुए, “राधा ! मैं स गलती पर था”।

यह साधारण सी घटना है। लेकिन इसमें जीवन का ध्रुव सत्य द्विधा है मनुष्य का अहंभाव जब तक नहीं छूटता, तब तक दिव्य ज्योति के दर्शन होते। तू और मैं सर्वनाम का भेद मिट जाने पर ही आत्मा ऊँची उठती है शिक्षा की सतत साधना करने से ही यह गति प्राप्त होती है, पहले नहीं। दृष्टि व्यापक हो जाती है और मनुष्य विश्व के अणु-अणु में परमात्मा को देखने लग जाता है।

इन्हीं से मिलते-जुलते भावों को महात्मा कबीर ने इन शब्दों में दुहराया है।

लाली मेरे लाल की, जिन देखूँ तित लाल।

लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥

ऐसे ही विश्वजनीनता के भाव तुलसी दादा के शब्दों से टपक रहा है।

सिया राम भय सब जग जानी।

करुं प्रणाम जोरि युग पानी ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऊँचे स्तरपर पहुँचे हुए सब लोगोंकी एक राय है कि शिक्षा दृष्टि-सीमा के क्षेत्र को अत्यन्त विस्तृत बना देती है।

आज हमारा यह दुर्भाग्य है कि हम शिक्षा के क्षेत्र में बहुत पिछड़े हुए हैं। यहाँ शिक्षित कहे जानेवाले लोगोंकी संख्या केवल दस प्रतिशत ही है। देश का अधिकांश जन-समूह अशिक्षित है। शिक्षा-विहीन होने के कारण यहाँके ८० प्रतिशत लोग मूक हैं। उनकी आवाज उनके दुःख-दर्द के भाव हम तक नहीं पहुँच सकते। यह हमारे लिए लज्जा की बात है और जो शिक्षित है उनमें अधिकांश ऐसे हैं, जो अंग्रेजी सभ्यता के सम्पर्क में आकर अपनी सभ्यता, वेश-भूषा, रहन-सहन और संस्कृति को ठुंकरा चुके हैं। ऐसी अवस्था में हम उनसे क्या आशा कर सकते हैं कि वे हमारे उत्थान के लिए भी कुछ करेंगे ?

हमें सबसे बड़ा दुःख तो इस बात का है कि हमारी सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति विदेशी वस्तुओं से की जाती है। हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विदेशीयता छा गई है। हमारे देश में शिक्षा मातृ-भाषा द्वारा नहीं दी जाती। अंग्रेजी हमारी शिक्षा की माध्यम बनी हुई है। यह बड़ा शोच है। भाषा अपने देश की संस्कृति और सभ्यता की द्योतक होती है। हमारी जातीयता और राष्ट्रीयता को कुचलने में अंग्रेजी ने हलाहल विष से भरे इन्जेक्शन का काम किया है। यह परधन हमपर लाद दी गई है।

यह एक स्वयंमिद्व सिद्धान्त है कि विजेता अपने पद-द्वारा हारु को अधिकार के विषट् बन्धनों में जकड़ने के लिए तैरारीय भाषा और धर्म में अनेक और अक्षरोप उत्पन्न करने की चेष्टा करता है। यहाँ नियम भाषा पर भी लागू हुआ। जब-जब जिन जाति ने भारत के शासन-सूत्र को अपने हाथ में लिया, तब-तब हम जाति ने अपनी अंगीकृत भाषा का ही व्यापक प्रचार करने का इरादा रखा।

मुसलमानों ने अपने शासन-काल में दाबनी भाषा, पारसी व प्रचार करने की किसी प्रवृत्ति की बर्तनी नहीं उठा रखी। यह सब हुआ, लेकिन इस समय तक हमारे अपनेपन का अविमान था। अंग्रेज कष्ट मरकर भी हमारे सभ्यता और संस्कृति को नहीं छोड़ा। इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि इस दुःख के सब कारणों और उपायों के लिए मर गिटे थे। बार्बरिक मुसलमान होने हुए भी हमारे देश के अर्थ और परात्न्य होते हुए भी आत्मसमर्पण को विनम्र ही हमने स्वीकार किया।

अंग्रेजी के शासन-काल में अंग्रेजी शिक्षा का अनेक बड़ा काम ही है कि हमें

और आत्म-सम्मान का भाव एक साथ नष्ट हो गया। भारतीय रीति-नैतिक-सभ्यता और भारतीय रहन-सहन और भारतीय वेश-भूषा से मुंह मोड़ लिया गया। मनु को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा, फलतः जानीयता के भाव नष्ट हो गये थे। सम्पूर्ण देश अंग्रेजों की आदिमक गुलामी के प्रचल घन्घनों में जकड़ा गया। वस्तुतः भारत के नैतिक-पतन की यह पराकाष्ठा थी।

परन्तु यह अवस्था अधिक दिनों तक नहीं रही। थोड़े ही दिनों में अंग्रेज सभ्यता का विनीत रूप लोगों के सामने प्रकट हो गया। जिसको उन्होंने बहुमूल्य रत्न समझा था, वह एक कृत्रिम पालिश चढ़ा कांच का टुकड़ा निकला। वेश-भूषा के छोड़े मैदान में आकर थक जाते हैं। वनावट परीक्षा-काल में पानी-पानी हो जाती है। किसी शायर ने ठीक ही कहा है:—

सचाई छिप नहीं सकती, वनावट के उसूलों से।

छगन्धी आ नहीं सकती, कभी कागज के फूलों से ॥

भारत के सौभाग्य से पुनः राष्ट्रीयता के भाव लोगों में जाग्रत हुए, अपनी गलती का उन्हें बोध हुआ। दुनिया के अन्य राष्ट्रों में अपना दर्जा हीन समझ कर उन्हें हार्दिक आत्म-ग्लानि हुई और वे एक साथ अपनी देशीयता की ओर झुक पड़े। इसी के फलस्वरूप आज मातृभाषा हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने की मधुर गूँज चारों ओर सुनाई पड़ रही है, देशीयता को नये सिरे से अपनाया जा रहा है। खान-पान, रहन-सहन और वेश-भूषा में भारतीयता आ रही है। विदेशीयता का गदला रंग प्रायः धुल चुका है। भावी भारत के लिए यह शुभ लक्षण है।

हमें केवल इतने ही से सन्तोष नहीं करना चाहिए। जहाँ तक हो सके, हमें अति शीघ्र इस अंग्रेजी शिक्षा को बदलना होगा और साथ ही हमारी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के पोषक ऐसे साहित्य को प्रोत्साहन देना होगा, जो हमारे नवयुवकों में आत्म-संयम, स्वावलम्बन और निर्भयता का विकास करे, जिससे वे साधारण रहन-सहन में ही ऊँचे से ऊँचे विचारों को प्राप्त कर सकें।

स्वदेशानुराग के भावों को हट्ट करने का एक मात्र साधन मातृभाषा ही है। अतः इसके अपनाने से ही हमारे आज के विद्यार्थी, जो कल के सुयोग्य नागरिक होंगे, शीघ्र ही अपने कर्तव्य को पहिचान कर देश की उन्नति में लग जायेंगे। ऐसा होने पर हमारे देश में भाषा-ऐक्य, विचार-ऐक्य, तथा उद्देश्य-ऐक्य होने में तनिक भी देर नहीं लगेगी। सफलता की उज्ज्वल रश्मियों का शुभ्र आलोक इसी से उत्पन्न होगा। इति।

# प्राचीन और आधुनिक संस्कृति

ले०—पण्डित नारायण दत्त शास्त्री 'प्रभाकर'

अध्यापक—स्टेट मिडिल स्कूल, नारानगर

आज के इस भौतिक चकाचौंध से पूर्ण विशृङ्खल युग में पुरुषवर्ग के भस्तिपक पर कैसी मादकता छाई हुई है, उसके हृदय पटल पर कैसे कुसंस्कार जमे हुए हैं, यह विचार करने की नितान्त आवश्यकता है। कहने को तो संसार में 'प्रगतिवाद' चल रहा है, परन्तु हम तो उसे 'दुर्गतिवाद' के नाम से पुकारेंगे। जिनमें शोषण की प्रवृत्ति को मुख्य स्थान मिलता हो, अन्याय-अत्याचार को प्रोत्साहन मिलता हो, ऐन्द्रियिक कामना को सच्चा मुख समझा जाता हो; सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, एवं शौच के पवित्र आदर्श को पूर्वजों के सड़ियल दिमाग की वपज, एवं हिन्दू-संस्कृति की घृणित व्यवस्था कहा जाता हो, क्या उसे हम 'प्रगतिवाद' कह सकते हैं? प्रगतिवाद का पर्याय अभिप्राय तो यही है, कि मुख एवं शान्ति के स्थापनपूर्वक उन्नति की जाय। परन्तु अपने जीवन में एक नवीन एवं स्थायी सुख को देने वाले 'अप्यात्मवाद' को मुखा कर, उस जीवन की ओर जाना, जिसमें सुख और शान्ति का नाम नहीं हो, केवल शान्ति और कामुकता का ही सम्बन्ध हो, क्या प्रगति है? वस्तुतः इसी 'दुर्गतिवाद' के फेर में पड़कर आज का दृष्टबुद्धि मानव भौतिक समस्तारों की मरणा मान बैठा है।

यह समय का प्रभाव है, या मानव-प्रवृत्ति की कृपा है, कुछ निश्चय नहीं किया जा सकता। इस विषय में एक प्राचीन श्लोक मिलता है यथा—

“कालो वा कारणं गतो राजा वा काल कारणम् ।  
इति ते संसारी भाभृदाजा बाल्म्ये वारम् ॥”

हमारे सिद्धान्त में यह श्लोक ठीक प्रतीत होता है। मानव के प्रवृत्ति से ही विचार बढ़ते हैं, उन्हें ही संसार के आगे बढ़ने के लिए, पूर्वज होने के लिए यह अनवरत प्रयत्न करता है। इसके लिए वह अलग दृष्ट बनना है और समय को अपने अनुकूल बनाने की नितान्त चेष्टा करना है। अमु।

अब हमें प्राचीन और आधुनिक संस्कृति पर तुलनात्मक विचार करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। सर्वप्रथम 'अधुनिक' पर विचार करना है

## चातुर्वर्ण्यः

वर्ण चार होते हैं—ब्राह्मण, क्षत्रि, वैश्य एवं शूद्र । वर्णव्यवस्था अनादि । भगवान् ने गीता में कहा है :—

“चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।”

ब्राह्मण सत्वगुण प्रधान, क्षत्रिय सत्त्वरजोमय, वैश्य रजस्तमोमय, एवं शू त्तम-प्रधान होते हैं । प्राचीन कालमें इस वर्ण-व्यवस्था का बड़ा आदर था ब्राह्मण सृष्टि के गुरु माने जाते थे । भगवान् मनुजी लिखते हैं:—

“एतद्देश प्रसूतस्य सकाशात्प्रजन्मनः

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥”

ब्राह्मणके मुख्यकर्म, अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान एवं प्रतिग्रह— ये छ हैं । उस समय के ब्राह्मण संप्रह-प्रिय नहीं होते थे ।

वे संप्रह को हीन दृष्टि से देखते थे । उनका आदर समस्त भूमण्डल में हुआ करता था । उनमें से अधिकांश शिलोब्ध वृत्ति से जीवन यापन किया करते थे । उस समय के ब्राह्मण प्रकाण्ड विद्वान् हुआ करते थे । ब्राह्मण की जीविका शुद्ध होती थी । यथा:—

“न लोकवृत्त चर्तेत वृत्तिर्हतोः कथञ्चन ।

अजिह्वामशठां शुद्धां जीवेद्ब्राह्मण जीविकाम् ॥” ( मनुः ४:११ )

क्षत्रिय के कर्म निम्न लिखित हैं—प्रजारक्षण, यजन, अध्ययन, दान, एवं विपयों में अप्रसक्ति । उस समय के राजा लोग स्वेच्छाचारी नहीं हुआ करते थे । वैदिक मर्यादाओं का उल्लङ्घन नहीं किया करते थे । राजधर्म से च्युत नहीं होते थे । उनके लिए धर्मशास्त्रों की सबसे बड़ी व्यवस्था यह थी कि, निरपराध को दण्ड एवं अपराधी को मुक्ति कभी न दो । यथा:—

“अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दृग्ङ्गांश्चैवाप्यदण्डयन् ।

अयनो महदान्नाति, नरकं चैव गच्छति ॥”

उस समय के क्षत्रिय प्रजा-पालन एवं गोरक्षा के लिए अपने प्राणों तक न्योद्धार कर दिया करते थे ।

वैश्य के पशुरक्षा, दान, यजन, अध्ययन, घणिकपथ ( व्यापार ) और कुसीद ( व्याज-घटा )—ये कर्म हैं । उस समय इन्हीं के अनुसार वैश्य अपनी जीवन-लीला यापन किया करते थे ।

दोनों वर्गों की सेवा करना, यह एक कम शूद्र का था और शूद्र इसी में अपना महत्त्व समझता था। प्राचीन काल से यह व्यवस्था चलती आ रही है, जो व्यवस्था से भारतवर्ष में पूर्ण सुख और शान्ति थी।

परन्तु आज इसके विपरीत हो रहा है। ब्राह्मणों के प्रतिग्रह को छोड़कर वे सर्वत्र लुप्तप्राय हो गए हैं। आज के ब्राह्मण सर्वथा कर्तव्यभ्रष्ट हो गए हैं। जो कर्तव्य एवं कर्तव्यनिष्ठ हैं, उनकी संख्या दाल में नमक के समान है। आज के शूद्र और उस समय के ब्राह्मणों की तुलना करने के विचार-मान से ही रोमाञ्च हो सकता है। आज के ब्राह्मणों में गुणों के स्थान को अवगुणों ने ग्रहण कर लिया है। पाचन आदि कौन से ऐसे घृणित कार्य हैं, जिन्हें आजका ब्राह्मण नहीं करता है। उन ब्राह्मणों के लिए शुद्ध सङ्कल्प तक बोलना कठिन हो गया है, जो कुल-देव के आसन पर सगव घैठा करते थे।

इस शत्रियों का भी यही हाल है। वे भी, अपने प्राचीन कर्मों को छोड़ घटे-घटे प्रजाका शोषण करना और आनन्द मनाना उनका मुख्य काम हो गया है। शत्रुओं के स्थान पर उनका उच्च प्रासाद वेश्याओं के मधुर स्वर और तथेके के आनन्द से गुंजता है। हवन के सुगन्ध के स्थान पर मुरादेवी का परिमल हो उनकी निष्ठा को लुप्त कर रहा है। प्रजा मरे या दूबे, कोई परवाह नहीं, उन्हें आनन्द देने का जन्मसिद्ध अधिकार है। वे आनन्द मनायेंगे! मनायेंगे!

वैश्य तो सबसे ही गए घीते हो गये हैं। ऐसा कौन-सा पृथित व्यवहार जिसे आज का वैश्य नहीं करता हो। गरीबों का खून चूस-चूस कर मंटा मंटी पीटाए गरीबों पर मसनदों के सदासे पड़ा रहना उनका मुख्य कर्तव्य-सा हो रहा है।

शूद्रका परिचर्यात्मक कार्य समाप्तप्राय हो गया। हो भी क्यों नहीं! शूद्रके परिचर्या करते-करते भी अधोगति को ही प्राप्त हो गए हैं। आज का शूद्र बिना दलित मन सारी व्यवस्था को डलट देने के लिए तैयार हो गया है। जो शूद्र तो उन में ऐसे भी हो गए हैं, जो त्रिभुज को शिखा देने से भी बाज नहीं आते। धरे! आज के ये प्रगतिवादी तो इस व्यवस्था को नष्ट करने ही शरत रहे हैं। परन्तु याद रहना चाहिए कि इसका नशा होने पर अन्धकार होगा।



आयु का उल्लेख शास्त्रों में पाया जाता है। मानव २५ वर्ष तक गुरुकुल में निशाम हुआ, ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ, गुरुगुण से गमना शास्त्रों का अध्ययन हुआ तपश्चर्या करता था। इसके मलाक पर अलौकिक तेज टपका करता था। २५ से ५० वर्ष तक गृहस्थाश्रम का पालन करना होता था। उसमें अतिथि ईश्वराराधना, धर्मप्रजोत्पत्ति, एवं माता-पिता की सेवा ये मुख्य कार्य होते ५० से ७५ वर्ष की अवस्था तक पर एवं जगती के समस्त कर्मों को छोड़ कर में तपस्या करनी होती थी। ७५ से १०० वर्ष की अवस्था में संन्यास प्रश्न संसार में भ्रमण करना पड़ता था तथा तीनों आश्रमों की शिखा देनी पड़ती थी परन्तु आज इसके विपरीत हो रहा है। ब्रह्मचर्य एवं वानप्रस्थ का तो अस्तित्व संसार से छठगया मालूम होता है। गृहस्थ एवं संन्यास-आश्रम विकृत अवस्था दिखाई देते हैं। आज के नवयुवक के गाल पिवके हुए, चेहरा श्रीहीन, एवं शरीर निर्बल मालूम होता है। उसमें आत्मबल का अंश भी नहीं है। इधर गृह अपने कर्तव्य से च्युत हो गया है। अतिथि को देखते ही उसका गृहद्वार बन्द हो जाता है। अतिथि-सेवा तो फिर करेंगे ही क्या! संन्यासियों की ही हम क्या कर सकते हैं। जटा रखना, रात्र लगाना एवं चिमटा रखना ही उनका प्रधान लक्ष्य हो गया है।

### पिता-पुत्र

पिता-पुत्रका मधुर एवं अविच्छिन्न सम्बन्ध जैसा प्राचीन काल में था, वैसा आज नहीं है। पहले यह सिद्धान्त था।

“लालयेत् पत्र वषाणि दश वषाणि ताडयेत् ।

सम्प्राप्ते षोडशे वषे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥”

पहले दो नियमों का यदि सर्वांश में नहीं, तो कुछ अंश में पालन अवश्य होता है, परन्तु पिछले नियम की जगह तो बिल्कुल उलटा हो गया है। पुत्र के समर्थ होते ही, या संसार के अनुभव करने योग्य होते ही, माता-पिता का अनुचित दबाव होने लगता है। माता-पिता को धन प्रिय लगने लग गया है। आज के माँ-बाप में स्नेह-भावना नहीं है। स्वार्थ-भावना है। अर्थोपार्जन में सब से चतुर लड़का उन्हें अधिक प्रिय है। दूसरा पुत्र चाहे, उसमें इतर गुण कितने ही क्यों न हों उनके प्रेम का पात्र नहीं हो सकता। इधर पुत्र निरंकुश हो गया है, वह अपनी स्वातन्त्र्य-वृत्ति पर माता-पिता का शासन नहीं चाहता। वह अपने अधिकारों के लिए लड़ता है। माता-पिता की सेवा करता है, तो भी स्वार्थ-भाव

से या लोभ से। जिम प्रकार माँ-बाप के चित्त में विकार आया है, उसी ।  
उसके चित्त में भी। माँ-बाप के प्रति पुत्र की पूज्य भावना नहीं है।  
भावुकता पर थोड़ा सा आघात होते ही, उसे माँ-बाप जहर से कड़वे लगने  
जाते हैं। आज दोनों शरावर हैं। परन्तु प्राचीन काल के दशरथ और श्रवण  
इतिहास के स्मरण होते ही ठंडी साँसें निकलने लग जाती हैं।

### गुरु-शिष्य

प्राचीन गुरु-शिष्य का सम्बन्ध आज कल्पना-सा प्रतीत होता है।  
काल के गुरु-शिष्यों को विद्या पढ़ाया करते थे, उसका पालन-पोषण  
करते थे, उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध किया करते थे, एवं उसके कल्याण  
समस्त भार अपने ऊपर ले लेते थे। वे शिष्य को सारी गुप्त निधि सौंप देते  
उस समय का शिष्य भी गुरु को सर्वस्व अर्पण कर दिया करता था। अपनी  
हुई भिक्षा में से भी एक दाना उठाकर खाना उसके लिए पाप था। गुरु उस  
उसकी कड़ी परीक्षा लिया करते थे, परन्तु वह सफल हुआ करता था। गुरु  
कुछ भी मांगता था, उसे देने में शिष्य जरा भी नहीं हिचकिचाता था।  
आरुणि आदि के उदाहरण हमारे सामने हैं।

इधर आज का गुरु लोलुप, स्वार्थी एवं शिष्य से अनुचित लाभ उठाने  
हो गया है। वह शिष्य को पढ़ाना नहीं चाहता, मुफ्त में ही तनख्वाह  
चाहता है। अपने छात्र को विश्व में उन्नतिशील देखने के लिए आज का  
लालायित नहीं है। केवल पढ़ाने की रस्म पूरी करता है। आज का शिष्य  
को भाड़े का टट्टू समझता है। वह उसे पूज्य दृष्टि से नहीं देखता, वह उसे अप  
नौकर समझता है। उसके लिए उसके हृदय में श्रद्धा नहीं है। केवल परिपा  
मात्र को निभाने के लिए वह बाह्य सभ्यता का प्रदर्शन करता है। प्राचीन काल  
जब शिष्य दण्डमेखलाधारी होकर गुरु के सामने विनम्र भाव से साञ्जलि वि  
प्रदण किया करता था, वहाँ आज का शिष्य हैट-यूट से मुसज्जित होकर अकड़  
गुरु के सामने बैठता है और गुरु के द्विद्रान्वेषण में ही तत्पर रहता है।

### पति-पत्नी

प्राचीन समय में 'विवाह' एक अटूट सम्बन्ध एवं पवित्र संस्कार माना जा  
या। स्त्री-पति की अर्धाङ्गिनी समझी जाती थी। "यत्र नार्यन्तु पूज्यन्ते रमन्  
तत्र देवताः" परम के सामने यह आदर्श था। उधर 'पतिसेवा', 'सतीत्वधर्म' क

सावित्री, सीता, मदालसा के उदाहरण हमारे सामने हैं। परन्तु आज नारी को अपना गुलाम समझता है। वह उसके ऊपर अनुचित शासन कर अपने व्यक्तित्व से उसका मूँह बन्द रखता है। एकपत्नीव्रत के आदर्श सर्वथा भूल चुका है। इधर आज की नारी की जिह्वा खुलना चाहती है। शताब्दियों से प्रताड़ित नारी विद्रोह करना चाहती है। वह पुरुष को 'समझती है, अपना क्रूर शासक समझती है। आज नारी को पति-से सन्तोष नहीं मिलता। वह आपातरमणाय स्वातन्त्र्य वातावरण में श्वास चाहती है, पतीव्रत के आदर्श को रसातल में गाड़ना चाहती है तथा पुरुष बराबरी करना चाहती है। आज गृहस्थी नरक हो गयी है, उसमें पति-पत्नी पारस्परिक द्वन्द्व चलता है। नारी एक पहेली हो गई है। आज के इस वाता में सुधार की आवश्यकता है। परन्तु प्राचीन आदर्शों का सर्वथा परित्याग पुरुष के सामाजिक जीवन को सर्वथा विपन्न बना देगा, इसमें कुछ भी नहीं है।

### आचार

प्राचीन भारत में आचार पर कितना धल दिया जाता था, यह किसी छिपा नहीं है। 'ब्राह्मो गृहूर्ते मुदध्येत' यह उस समय का प्रधान नारा था। समय के शान्त वातावरण में मानव के मस्तिष्क को एक विशेष प्रकार की शान्ति मिलती थी, सारे दिनभर कार्य करने की क्षमता प्रदान करती थी। उसके बाद शौच, दन्तधावन, स्नान, एवं सन्ध्योपासन की व्यवस्था थी। तदनन्तर देवाराधना, वलि-वैश्वदेव, एवं अग्निहोत्र की व्यवस्था थी। अग्निहोत्र के पवित्र धूम से समस्त गृह पवित्र हो जाता था, घरका वायुमण्डल विशेष प्रकार की गन्ध से परिपूर्ण हो जाता था। इसके बाद अतिथि पूजाकर बाल-वृद्धों को जिमाने के पीछे गृहस्थ को भोजन करने की आज्ञा मिलती थी। इसके बाद वह धनोपार्जन की व्यवस्था करता था। फिर सार्यंकाल वही स्नान, सन्ध्या, ईश-प्रार्थना आदि करनी होती थी। रात्रि में ज्ञान-चर्चा भी की जाती थी। इस प्रकार प्राचीन व्यवस्था के अनुसार जीवन-यापन करनेवाले पुरुष के दोनों लोक सुधर जाते थे। इधर इस समय इस भौतिकवादके फेर में पड़कर मनुष्य मूठे धन्धों में घुरी तरह फंसा हुआ है, जिससे पारलौकिक कृत्या की ओर अत्यधिक उदासीन हो चुका है। इसी प्रकार ऐहलौकिक प्राचीन धर्म को भी हेय दृष्टि से देखने लग गया है। चीड़ी, सिगरेट, भांग, गाँजा, परस, अफीम आदि जीवनीय शक्ति का ह्रास कर देनेवाले पदार्थों का उपभोग

करने लग गया है। भोजन करने में उसे किसी प्रकार का विचार नहीं उच्छिष्ट, अनुच्छिष्ट, दूषित, अपवित्र पैसा भी क्यों न हो, यदि उसके गले में बैठकता है, तो उसे खाने में कोई आपत्ति नहीं। भगवान् ने गीता में कहा है बिना अप्रिहोत्र आदि किए भोजन करता है, वह राक्षस है। क्रान्ति और ही इस जीवन का प्रधान लक्ष्य हो गया है। तरस है आज के भोले दुर्बुद्धि पर !

इस प्रकार ऊपर लिखित सूक्ष्म विवेचन से यह स्पष्ट सिद्ध होता है प्राचीन संस्कृति के पालन में ही मानव का वास्तविक फल्याण निहित है। भौतिक चमत्कारों से मानव को आपातरमणीय सुख मिलता हो, परन्तु परिणाम विष से भी भयङ्कर सिद्ध होता है। पार्श्वस्थ देशीयों का जीवन प्रकार अशान्तिपूर्ण है, यह किसी विचारशील से छिपा नहीं है। आधुनिक मानव के अधोपतन में सबसे बड़ी हेतु है। अतः हमें प्राचीन संस्कृति के प्रयत्नशील होना चाहिए।

## कालिदास और प्रकृति

लेखक :—

पं० नारायणदत्त शम्भूरीय भारद्वाज

आयुर्वेदाचार्य, साहित्यरत्न, हिन्दी प्रभाषर, राजगढ़ (बीकानेर)

असृष्टदोषा मलिनोव ऋषा

द्वाराश्लोव उषिना गुर्जोने ।

प्रियाद् पालीव विमर्दन्ना

न कालिदासात्परमदामी ॥

( अंशुमन कवि )

संस्कृत-साहित्य में प्रकृति-प्रेम का प्रधानत्व आदि कवि में पटा आ । हमारे आदि कवि काल्मीकि के हृदय में जो भावुकता थी, वह कालिदास भवभूति के हृदय को प्रादित कर बुद्ध बाल पीठे मन्द पर गये । काल्मीकि का प्रकृति से पूर्ण अनुराग था । बिना अनुभव के ऐसे मूल्य

का भी यथेष्ट चित्रण किया है। कविकुल-शिरोमणि कालिदास ने अपने काचमत्कार से पहले-पहल समस्त संसार में ख्याति प्राप्त की। वस्तुतः संस्कृत-साका सौष्टव और सौरभ बहुत कुछ इन्हीं के ग्रन्थों पर निर्भर है। यह कहनाचित न होगा कि यदि संस्कृत-साहित्य से कालिदास को हटा दिया जाय, तो अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के रहते हुए भी सुरभारती की लोकप्रियता में अकमी आ जायगी।

विश्व के विशाल साहित्य में शैक्सपियर को विद्वान् अन्तर्जगत् का सर्वसाहित्यकार समझते हैं, और कालिदास को बाह्य जगत् का। बाह्य जगत् चित्रण में प्रकृति के वर्णन में कालिदास ने जो मनोरम काव्य-रचना की है वह साहित्य-जगत् में अपूर्व है। इनके प्रकृति-वर्णन में इतनी सजीवता है, इतनी रमणीयता है, तथा इतनी भव्यता और स्वाभाविकता है, कि साहित्यिकों के मन हठात् आकृष्ट हो जाते हैं। उनके प्रकृति-प्रेम का अनुमान मेघदूत के एक ही श्लोक से लगाया जा सकता है।—

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं  
नीता लोभ प्रसवरजसा पाण्डुतामानने धीः ।  
चूडापातो नवकुरवकं चादरुणं शिरीषं  
सीमन्ते च त्वदुपगमज यत्र नीपं बधूनाम् ॥१॥

इस श्लोक में जो वर्णन है, वह शकुन्तला जैसी तापस बाला का नहीं है; अपितु धनपति कुबेर की उस अलकापुरी का वर्णन है, जहाँ की महि रत्नखचित है, जहाँ गगनचुम्बिनी प्रासादमालायं श्रेणीबद्ध खड़ी हैं, स्वर्ण सिकता है। जहाँ के यक्ष अपनी अलवेली बियों को लेकर स्फटिक भवनों पर बैठते हैं। अमर-प्रार्थित यक्षकन्याएं दिन-रात अपनी मुद्रियों में रत्न लेकर उसकी सुनहरी बालू में डाल कर छिपाने-ढूँढ़ने का खेल खेला करती हैं। स्निग्ध रजनी में रत्नप्रदीप जला करते हैं, जहाँ के सरोवर की सीढ़ियों पर नीलम जड़ा हुआ है। सरोवर में चिकने वैदूर्यमणि की नालवाले घट्ट से कमल खिल रहे हैं। जहाँ, रङ्ग-विरती यक्ष, नेत्रोन्मादिनी मधुर-मदिरा, कोमल पद्म, सुरभित सुमन, विविध प्रकार के भूषण, चरणरञ्जक अलक्त आदि, कन्याओं के शृङ्गार की सभी वस्तुएँ कल्पवृक्ष से अनायास प्राप्त हो जाती हैं। इतना सच होते हुए भी वहाँ की बालाओं का शृङ्गार प्रकृति की विभूतियों से होता है, न कि शिलामणियों के टुकड़ों से। यह वर्णन इस बात को सूचित करता है, कि प्रकृति के पुजारी भावुक कवि की दृष्टि की

इन प्राकृतिक पदार्थों में जो सुपमा लक्षित होती है, वह रत्न-मुक्ता-रत्नचित स्वर्ण आभूषणों में नहीं।

इस महाकवि की शकुन्तला मानों साक्षात् प्रकृति की दुलारी कन्या है। आरम्भसे ही तपोवनमें पलने वाली शकुन्तला जिस समय आश्रम-तरुओं की सोचती हुई हमारे सम्मुख आती है, उस समय आश्रम-तरुओं के प्रति दुःख का स्नेह ऐसा मालूम पड़ता है; मानों वे उसके कुटुम्बी हों। आश्रम-वृक्षों की भाँति सेवा करने वाली शकुन्तला का, तपोवन की लताओं के कव स्तवक हुए, उनमें मञ्जरियाँ कव प्रस्फुटित हुईं, इन सब बातों का ध्यान रखने शकुन्तला का अनुपम प्रकृति-प्रेम उस समय विशेष लक्षित होता है, जब वह मर्हि कष्य द्रवित होकर पतिगृह जाती हुई शकुन्तला को निर्दिष्ट कर कहते हैं

पातु न प्रथम व्यवस्थति जल युष्मास्त्रपोतेषु या  
नादत्ते प्रियमगदनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।  
आयो यः कुण्डमप्रसूतिमनये यस्या भवत्युन्मव—  
सेय याति शकुन्तला पतिगृह सर्वरतुनायनाम् ॥

शकुन्तला के इस प्रकृति-प्रेम का प्रभाव यह होता है कि तपोवन के समस्त वृक्ष एवं चेतन ऐसे अनुरागी हो जाते हैं कि उसकी विदाई के समय यत्न-देयताओं ने तथा तरु-लताओं ने दिव्य आभूषण तक उपहारस्वरूप दे डाले।

ऐसा जान पड़ता है, मानों कवि-कुल-गुरु कालिदास की समस्त वृत्तियों का उद्गार ही प्रकृति के सौन्दर्य-निरीक्षण में उनकी आरम्भिक अवस्थामें रम गया है। शत्रुसंहार, जो उनका प्रारम्भिक काव्य माना जाता है, उसमें प्रकृति-वर्णन इतना प्रगल्भ एवं काव्याङ्गपूर्ण है कि परवर्ती कवियों का वर्णन कालिदास की शृङ्गार मालूम पड़ता है। यद्यपि उसमें प्रकृति-वर्णन उद्दीपन विभाव के रूप में आया है तथापि उसका प्रथम श्लोक—

प्रचलत्पूर्वलृहणीयकाः द्रुमाः श्रुतादगाहृक्षनवर्षिमद्य ।  
दिनाश्रमयेऽभ्युपसान्तमगमयो निदपवत्तो-पदुयन्त इति ॥

इस वाक्य का प्रभाव है कि कवि केवल अलङ्कारों के साथ निरन्तर बहने वाला नहीं है, बरन् प्रकृति का भादुक प्रेमी है। और फिर—

वाच्यंतेति निर्दिष्टं किञ्चिद् ॥ १३० ॥  
हमैत्रं कविके कविनां कुटुम्बे मया न ।  
॥ १३० ॥

आदि शरद्वर्णन कवि की सूक्ष्म एवं व्यापक दृष्टि का उनके वाग्बिक का प्रमाण है। मनोहर वसन्त के आते ही तो क्या गर्दना है !

रस कृशों में फूल गिल गए हैं, जलमें कमल विकसित हो गए हैं त्रिय्या गतवाली हो गईं, वायुमें सुगन्ध आने लगी, सन्ध्या मुहायनी हो गई पवन भी—

आम्रपवन सुगुमगाः गह्वर दाग्ना  
विस्तारयन् परभृन्मय वर्षाणि दिधु ।  
वायुर्त्रिधाति तदयानि हरन्तराणां  
नीहारपात रिगमाएभगे यमन्ते ॥

यह वर्णन बहुत ही स्वाभाविक है, पर गयाक्षमण्डित कमरेमें बैठकर नकल लिखा गया है, किन्तु मञ्जरित आश्र के उपवन में बैठकर प्रमत्त कोकिल को मधुपूक सुनकर आनन्द-विभोर होने वाले कविकी लेखनीसे प्रसूत मालूम होता है इस प्रकार ऋतुसंहार का प्रत्येक पद्य इतना सुन्दर, सरस एवं भव्य है कि जिनके सुनते ही प्रकृति का मोहक सौन्दर्य आँखों के सामने खड़ा हो जाता है।

कुमारसम्भव तो प्रकृतिनटी के ललित लारव की रङ्गशाला हैं। प्रथम सर्ग का हिमालय-वर्णन संस्कृत-साहित्यमें क्या विश्वसाहित्य में धेजोड़ है। मुञ्जभास हिमराशि-मण्डित शार्दूल जाल अत्यन्त विशाल हिमालय का वर्णन कविने हृदय खोल कर किया है। देखिए—

यग्याप्सरोविभ्रममएधनानां सम्पादयित्री शित्तरेर्विभर्ति ।  
बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसन्ध्यामिव धातुमताम् ॥

ऐसा मधुर प्रेममय वर्णन प्रकृति की मनोरम लीलाओं में मुग्ध होकर ही कवि कर सकता है। इस महाकवि की अनेक विशेषताओं में यह भी एक विशेषता है कि जहाँ वे प्रकृति के स्वाभाविक चित्रणमें अतीव प्रवीण हैं, वहाँ नव नवोन्मेषशालिनी प्रतिभाके सहारे अलौकिक और दिव्य विभूतियों का वर्णन करने में भी नितान्त निपुण हैं।

जहाँ उन्हें एक ओर विशाल हिमालय का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन करने में अत्यन्त सफलता मिली है, वहाँ दूसरी ओर औपध, प्रस्थपुरी, हिमालयनिवासी यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा, अलका, सुमेरु, गन्दमादनादि के काल्पनिक वर्णन में भी उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। उनकी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का परिचय हिमालय-वर्णन पढ़ते ही मिल जाता है।







जब सन्ध्या समय पर्वतों के शरणांगों पर सूर्य की कुंकुमकिरणें पड़ती हैं, तब उनमें इन्द्रधनुष चमकने लग जाता है, पर सन्ध्या समय सूर्य के लटक जाने पर उनमें इन्द्रधनुष नहीं दिखायी देता इसी का वर्णन कवि करता है—

सौक्यव्यतिकरं मरीचिभिर्दृश्यन्त्यवने विवम्बति ।  
इन्द्रचाप परिणय द्रव्यतां निर्भराम्भव पितुर्वजन्त्यमी ॥

किन्तु शरणांगों में इन्द्रधनुष न दिखायी पड़ने पर भी तालाबों में लटकते हुए सूर्य की समतल कान्ति पड़ने से ऐसा जान पड़ता है, मानों उनके ऊपर सोने का मुद्र बना हो—

पश्य पश्चिमदिगन्तलम्बिना निर्मित मिनकषे विवम्बति ।  
लक्ष्म्या प्रतिमया सरोऽम्भसां तापनीयमिव सेतुबन्धनम् ॥

रुद्रि का अनुसरण करने वाले कवियों में ऐसी कल्पना जागृत नहीं होती, शरणांग यह कल्पना उस कवि की प्रतीत होती है जो मुग्ध दृष्टि से प्रकृति निरीक्षण कर सब-कुछ भूल गया हो ।

मेघदूत तो मानों प्रकृति रमणी की लालित्यपूर्ण चेष्टाओं का आगार है । प्रकृति की जो प्रधानता मेघदूत में मिली है वह संस्कृत के और किसी काव्य में नहीं । पूर्वमेघ तो आदि से अन्त तक प्रकृति की एक मधुर मसृष्टी या चामल भारत भूमि के स्वरूप का ही ध्यान है । जो इस स्वरूप के ध्यान में अपने को भूल कर कभी-कभी भस्त हुआ करता है वह शुक्र जी के शब्दों में—  
‘धूम-धूम कर भाषण दे या न दे, चन्द्रा इकट्ठा करे या न करे, देशवासियों की शान्तदमी का हिमाव लगाए या न लगाए पर है सदा देश-प्रेमी ।’ ‘मेघदूत’ न कल्पना की मसृष्टी है, न कल्पना की विचित्रता है ; किन्तु यह है, प्राचीन भारत के कवियों के भावुक हृदय की अपनी प्रिय जन्मभूमि की रूपमाधुरी पर सीधी-माची दृष्टि । ‘पूर्वमेघ’ के चलते ही कितने मधुर शब्दों में वर्षा की सूचना मिलती है—

मन्द मन्द नृति पवनश्चानुत्थो यथास्वा  
शान्तश्चायं नृति मधुरं शान्तकल्पे मगध्वा ।  
गर्भोधानक्षणपरिष्वयान्तरमावडमाला  
सोविष्यन्ते मयतलुभग मे भवन्त बनाका ॥

मौष्मिक के बाद पहले-पहल वर्षा की धृष्टों के पड़ने से गरमी भर तपे हुए शरणांगों से वाष्प निकलती है, उसका वर्णन देखिए—

कालिदास को पूर्ण कविहृदय मिला था। वर्षा के प्रथम ज तुरन्त की जोती हुई धरती, उससे प्रेम रखने वाली भोली-भाली साफ-सुथरे प्राम चैत्यों, और कथा-कोविद प्राम-वृन्दों में उन्होंने एक का माधुर्य अनुभव किया था। वर्षा होते ही वसुन्धरा सींधी-सींधी है, उस समय सरस कृपक वालाएँ कितने स्नेह से अम्बुबाहों के प्रति दे-

“त्वय्यायत्तं कृपिकलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः,

प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधू लोचनैः पीयमानः ।

सद्यः सीरोत्कण्ठरभिः-क्षेत्रमास्त्र्य मालं

किञ्चित्पश्चाद् मज्ज लघुगतिर्भय एवोत्तरेण ॥”

इस प्रकार मेघदूत अत्यन्त भव्य प्रकृतिवर्णन से भरा पड़ा है। एक अङ्ग के नहीं वरन् समस्त अङ्गों के वे बड़े सिद्धहस्त हैं। ‘मेघदूत’ देखते हैं कि उनका प्रकृतिवर्णन एक ओर तो प्राकृतिक सुन्दरता का चित्र और दूसरी ओर बाह्यजगत् का अन्तर्जगत् के साथ सम्बन्ध मिलाने वा उन प्राकृतिक दृश्यों को देखकर केवल कवि के, यक्ष के, या अनुप्राणित हृदय भाव ही नहीं वर्णित हैं किन्तु प्रामवधुओं, पथिकों और विरहियों के का भी अत्यन्त मनोरम चित्रण है। इतना ही नहीं चातकों, मयूरों और फी उन चेष्टाओं का वर्णन है जिनमें उनकी अन्तरात्मा की छाया स्पष्ट मलकती जन्तु जगत् की मनोहर चेष्टाओं के चित्रण में कालिदास बड़े सिद्धहस्त हैं। बाण चढ़ाये हरिण के पीछे दौड़ रहे हैं और वह प्रावा टेंढ़ी करके पीछे नि हुआ इसलिए कि, कहीं रथ समीप न आ गया हो, चौकड़ी मारता भाग रहा थक जाने के कारण उसकी सौत फूल रही है और मुँह खुल गया है, इस अर्धचर्वित कुशा उसके मुँह से गिर रही है और चौकड़ी की तेजी से वह उड़ता जान पड़ता है—

प्रोयाभङ्गाभिरामं सुद्वारुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः

पात्पार्थेन प्रविष्टः दारपतनभवाद्भूयसा पूर्वकायम् ।

दर्भैरधावलीडैः ध्रमविश्रुतमुत्तमं शिभिः कीर्णकर्म

पयोदपन्दुपत्वाद्वियनि बहुतरं श्लोकमुष्यां प्रयाति ॥

महाकवि जो कुछ लिखते थे वह उनकी वैयक्तिक अनुभूति और निरीक्षण का परिणाम होता था। शकुन्तला के प्रथम अंक में आश्रम की जिन विशेषताओं का वर्णन किया गया है, वह मानों अनेक बार देखे हैं। वही पृष्ठों के नीचे

सुकुमुव ध्रष्ट तिस्री के दाने धिगरे पड़े हैं। कहीं इधर-उधर पड़े हुए पत्थर यह बता रहे हैं कि इन पर अनेक बार हिंगोट के फल फूटे गये हैं। कहीं-कहीं निडर तड़े हुए मृग इस विद्वाम से रय शब्द सुन रहे हैं कि आश्रम में तुम्हें कोई छेड़ेगा नहीं, और कहीं नदी-नालों पर धाने-ज्ञाने के मार्गों में मुनियों के बल्कलों से टपके हुए जल की रेखायें घनी हुई हैं। इस प्रकार का वर्णन सच्चे सभ्यताप्रेमी कवि ही कर सकते हैं।

महाकवि के वर्णन की यह एक विशेषता है कि यदि उनका वर्णन, दिव्य-पार्श्वों से और धलौकिक स्थलियों से सम्बन्ध नहीं है, तो उसमें स्वाभाविकता और भौगोलिक सत्यता अवश्य रहती है। 'भारवि' के समान हिमालय में वे मोती का वर्णन नहीं करते। जिस देश, जिस काल, जिस परिस्थिति में उनकी प्रकृति विभ्रित होती है, वह उस देश-काल के पूर्ण अनुरूप होती है। रघु के दिग्विजय का वर्णन करते हुए कवि, जिस मार्ग से और जिन-जिन देशों में ले चलता है; और वहाँ की जो बात उसके वर्णन में आती हैं वे भौगोलिक विचार से पूर्ण वास्तविक हैं। चाहे वह प्राच्य समुद्र के तटस्थ श्यामल ताली का वर्णन करता है, चाहे बङ्गाल के कमल का वर्णन करता है, चाहे महेन्द्राद्रि के नागवल्लीदलों और नारिचेलसव का चित्र खींचता है, चाहे मारीचवनमें परिभ्रान्त हारीत वाले बलयाद्रि की उपत्यका की कथा सुनाता है, चाहे पाण्ड्य देश की ताम्रपर्णी की बात बताता है, चाहे केरल की मुरला नदी के पुलिनस्थ केतकी के पुष्प परागों की गाथा सुनाता है, चाहे भारत के पश्चिमो सीमाप्रान्त के अंगूर से व्याप्त प्रदेश का वृत्तान्त ब्रह्मा है, चाहे फारमीर के कुंकुम केसरो की कहानी कहता है, चाहे हिमालय के भोजपत्रों का मर्मर, मृगों की वस्तुरी, सरल और देवदारु के तरु और गङ्गा के शीकर से मिश्रित शीतल धनिल का वर्णन करता है, अथवा लौहित्य नदी पार करने पर कामरूप के अगुरु वृक्षों का वर्णन करता है सच-सुद्ध भौगोलिक वास्तविकता से युक्त है।

इस भौगोलिक सत्य के अतिरिक्त महाकवि कालिदास के प्रकृति वर्णन की दूसरी विशेषता यह है कि प्रस्तुत की अमूर्त विशेषताओं और सुपमा-सम्बन्धी बिलक्षणताओं के साकार साक्षात्कार के लिए वह प्रकृति के अप्रस्तुत प्रसंगों की निर्बाध सहायता लेता है। शकुन्तला की स्वाभाविक सुपमा की ललित बलना को चित्रित करने के लिए वह कहता है—

द्वयमधिकमनोज्ञा यत्कृतं नापि मन्वी

किमिव हि मपुरागं गण्डनं नाकृतीनाम् ॥

इसमें शकुन्तला की सद्गुण रूप सम्पत्ति का मूर्त प्रत्यक्षी करण कराने के सेवार से घिरे हुए कमल और मकलद्ग कलाधर की सहायता ली गई है। भांति शकुन्तला की अभुक्तपूर्व यौवन अभिव्यक्ति के लिए, उसके अछूते यौवन मनोरमता प्रतिपादित करने के लिए कवि अप्रस्तुत श्री महायता लेकर कहता है।

अनाघ्रात पुष्पं किमन्यमन्दनं कर्मै

रनाविद्ध रय मधु नय मनाप्यादितममम् ।

अखण्ड पुण्यानां फल्मिव च तद्गुणमनघं

न जानि भोक्तार कमिह ममुपस्थाप्यति विधिः ॥

अनाघ्रात पुण्यादि का वर्णन हमारे सम्मुख उमकी अभुक्तरूप सम्पत्ति एक भव्य और प्रभावशाली चित्र उपस्थित कर देता है। इस चित्र की सहायता से अमूर्त भावना के मूर्त साक्षात्करण में अत्यन्त तीव्रता आ जाती है। हृदय पर उसकी एक मधुर और अमिट छाप पड़ती है।

रमणी सौन्दर्य को देख कर अनेक तरुणों के मन आकृष्ट होते रहते हैं, पर इतना कह देना कि अमुक सुन्दरी को देख कर अमुक युवक का मन मुग्ध हो गया पर्याप्त नहीं। केवल इतने में न तो कोई साहित्यिक रमणीयता जान पड़ती है और न इसका कोई प्रभाव ही पड़ता है। जब उर्वशी का स्वर्गीय सौन्दर्य देख कर पुरुषा का हृदय मुग्ध हो गया तब उसी का प्रभावशाली वर्णन करते हुए कवि कहता है—

“एषा मनो मे प्रसभ दशरीरात् पितुः पत्रं मध्यममुत्पतन्ती ।

उराङ्गना कर्पति खंडिनापात्सूय मृणालादिव राजहंसी ॥

जैसे मृणाल के दो खण्ड कर के एक खण्ड के दूसरे खण्ड से दूर किये जाने पर भी उसमें से निकलता हुआ सूत्र दोनों का सम्बन्ध बनाए रखता है; इसी प्रकार उर्वशी के चले जाने पर भी महाराज की आंखें और अन्तर्दृष्टियां उसी ओर लगी हैं। इसी प्रकार विरहिणी-यक्षिणी की मलिन मूर्तिका साक्षात्कार कराने के हेतु कवि ने उसे शिशिरमयिता पद्मिनी के तुल्य कहा है। आगे उसी का वर्णन करते हुए कविकुल कमल दिवाकर कहते हैं—

नून तस्याः प्रबलहृदितो रुद्धनेत्र दिवाया

निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् ।

हस्तन्यस्त मुखमसकलव्यक्तिलम्बालकम्बा—

दिन्द्रीर्दंभं तदनुसरणत्रिलप्ट कान्तिर्विभर्ति ॥

यहाँ भी अप्रस्तुत चन्द्र यह सूचित करता है कि सहज सुन्दर यक्षिणी  
 गुण वियोग के बादलों से कान्तिहीन हो गया है। इस रीति से महाकवि  
 कवियों में अप्रस्तुत रूप में भी प्रकृति का अत्यन्त प्रभाव शील और  
 दायोत्पाक घर्षण पग-पग पर भरा पड़ा है ॥

कवि की दृष्टि में मानव के चारों ओर फैली हुई विशाल प्रकृति  
 तारक-भासित अम्बर, अगाध समुद्र, विशाल घन-लता, तरु, फल, पुष्प, पल्लव,  
 नदी, पशु-पक्षी; तथा प्रकृति के अनन्त प्रदर्शन केवल जड़ या बुद्धि और म.  
 से हीन साधारण-वस्तुएँ नहीं हैं, वरन् उसकी भावुक चक्षुओं में और  
 कल्पनाओं में वे सभी चेतन जान पड़ते हैं। वे सभी भावनाशील हैं; और मा-  
 जीवन के प्रति उनके हृदय में सहानुभूति है। मानव पीड़ा से वे व्यथित होते  
 मानव सुख से वे सुखी हैं। यह परम्परा महर्षि वाल्मीकि से चली आ रही है  
 सीता के वियोग में राम पशु पक्षी लता वृक्षों से सीता का पता पूछते हैं।  
 के मानस में भी राम कहते हैं—

हे स्वर्ग मृग हे मधुकर स्येनी।

तुम्ह देखी ? सीता मृगैनी ॥

यह वियोग धन्य है जिसमें जड़ चेतन का साधारणीकरण हो जाता है  
 इसके भय और विशद उदाहरण एक नहीं महाकवि के काव्य में अनेक हैं। विक्रमो-  
 वंशीय के चतुर्थ अङ्क में उर्वशी के वियोग में विलाप करते हुए पुरूरवा को देव  
 सारी प्रकृति सहानुभूति से आकुल हो उठती है। पुरूरवा को भी सारी  
 सजीव और मानव सुपमा में व्याप्त दिखाई पड़ती है। सम्पूर्ण प्रकृति को अपने  
 प्रति सहानुभूति युक्त और सद्य देखकर ही पुरूरवा के द्वारा कवि अपने हृदय के भाव  
 उनके प्रति व्यक्त करता है। इसी भाँति शकुन्तला भी मानो प्रकृति सुन्दरी की  
 नैसर्गिक शोभामयी वनदेवी की दुलारी पुत्री है। तपोवन के पशुपक्षियों तथा  
 मृगों के प्रति उसका हृदय धान्धवस्नेह से आवृत है। नैसर्गिक वन्यसुपमा से  
 उसके काम्य-कलेवर के अणु-अणु निर्मित और प्रतिपाटित हैं। वृष के कथनानु-  
 सार जो, आश्रम वृक्षों को बिना सींचे जल पीना भी पसन्द नहीं करती, उस  
 शकुन्तला की विदाई के समय यदि समस्त तपोवन विरहाकुल हो उठता है तो क्या  
 आश्चर्य ? धमेपिता कण्व और अन्य तपस्वियों की व्याकुलता तो ठीक ही है, पर  
 जड़ और मूक प्रकृति को शोक कातरता और व्यथा व्याकुलता इसी कवि के अन्त-  
 र्करण के साथ स्पन्दित हो सकती है जिसकी दृष्टान्तों के चार प्रकृति के व्यापारों में  
 पत्र उठा करते हैं।

महाकवि के द्वारा जड़ प्रकृति का चेतनीकरण 'मेघदूत' में आदि तक प्रतिबिम्बित दिखाई पड़ता है। यक्ष, जड़ मेघ को अपना दूत बनाकर प्रियतमा के पास भेजता है। मेघ की सेवा मार्ग में वक्रपंक्ति करेगी। पाथेय लिए मार्ग में राजहंस साथ देंगे। जाने के समय 'रामगिरि' भवहायेगा। मार्ग में सुन्दर रेखा मिलेगी। मयूर स्वागत करेंगे। विपद्पहुंचने पर कामुकेश्वा पूर्ण होगी; और वेत्रवती के चञ्चल तरङ्ग भ्रुकुटियों मुख का वह चुम्बन करेगा। तथा प्रकृति चेतन मानव के समान आचरण करेगी।

जहाँ एक ओर कवि मनुष्य की बाह्य सुन्दरता की प्रभावशील और अनुभूति के लिए प्रकृति के मनोरम और ललित उपादानों की सहायता, वही दूसरी प्राकृतिक रमणीयता की प्रभावशीलता तथा तीव्रता बढ़ाने के लिए प्रकृति में भी मानव सौन्दर्य को आरोप करके अप्रस्तुत रूप में मानवीय तथा भावाभिव्यक्तिकी सहायता लेता है—

वीचिक्षोभस्तनित - विहग - श्रेणिकाञ्ची गुणा या  
संसर्पन्त्याः स्वलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः ।  
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य  
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥

महाकवि के सम्मुख सुरतगलानि को दूर करने वाला शिप्रानिल प्रार्थना चाटुकार प्रियतम हैं। इसी प्रकार गम्भीरा नदी का चटुल शफरोद्वर्त उसके कटाक्ष हैं। अतः यक्ष मेघ से कहता है—

तस्याः किञ्चिन्करुणमिव प्राप्तनीवारशाखं  
हरवा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधो नितम्बम् ।  
ग्रन्थानं ते कथमपि सग्रे लम्बमानस्य भावि  
शाताम्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥

इस श्लोक से हमें यह पता चलता है कि जिस भाँति एक विलास कामकला-निपुण नवयुवक के हृदय में 'विवृत जघना' रमणी को देखकर प्रति आकर्षण होता है, उसी भाँति वर्षाकालीन गम्भीरा नदी की उपयुक्त सज्जा देकर कवि का मन वहाँ रम गया है; और सब कुछ भूल कर वह विलास निहारने में मस्त हो उठता है।

कवि कुल्लुगुरु कालिदास के सभी काव्यों में और विशेषतः 'मेघदूत' इस भाँति के भरे पड़े हैं। अतः चाहे प्रस्तुत रूप में हो अथवा अप्रस्तुत रूप में कवि का प्रकृति निरीक्षण और उसका वर्णन है विलक्षण। कालिदास की भाँति प्रकृति में गूँजती रही है और गूँजती रहेगी।

# श्रीराजस्थान संस्कृत विद्यालय

तारानगर ( वीकानेर )

स्नातक=परिष्कष

१ श्री पं० रामचन्द्र शर्मा ( मलसीसर ); अध्ययन—सिद्धान्त-कौमुदी

सं० श्रीमद्भागवत, रघुवंश, मेघदूतादि । आपने अपने समय में विद्वत्ता से नाम प्राप्त किया था । कुछ वर्ष पूर्व आपका स्वर्गवास हो गया है । व्यापारी भी थे ।

२ श्री पं० हरिश्चन्द्र शर्मा ( मलसीसर ); अध्ययन—सिद्धान्त-कौमुदी

श्रीमद्भागवत, लीलावती, मुहूर्तचिन्तामणि आदि । आपने ज्योतिष-विद्या द्वारा पद प्राप्त किया था । आप कर्मकाण्ड आदि कार्य में भी निपुण थे ।

३ श्री पं० गङ्गाधर शर्मा ( तारानगर ); लघुकौमुदी, सारस्वत ।

तारानगर एवं कलकत्ता में पाण्डित्य कार्य करते हैं ।

४ श्री पं० तुलसीराम शर्मा ( तारानगर ); सारस्वत चन्द्रिका, सिद्धान्त

कौमुदी, श्रीमद्भागवत । आप तारानगर के प्रसिद्ध कवि एवं संगीतज्ञ थे । आपका कुछ वर्ष पहले स्वर्गवास हो गया है ।

५ श्री बाबू रामस्वरूप वर्काल ( मण्डावर, विज्नोर ); आप राजगढ़ में

बकालत कर रहे हैं, कवि एवं लेखक भी हैं । आजादी की लहर, गान्धीगीता-गान, मजदूर, किसान, आदि कई संग्रह हाल में प्रकाशित हुए हैं । देश-सेवा के लिए सर्वदा कटिबद्ध रहते हैं ।

६ श्री पं० विश्वनाथ शर्मा ( तारानगर ); आप बटरामपुर ( बन्नाल )

में पाण्डित्य-कार्य कर रहे हैं ।

७ श्री पं० ज्वाला प्रसाद शर्मा ( तारानगर ) ।

८ श्री पं० पनू राम शर्मा ( तारानगर ); लघुकौमुदी, सारस्वत, एंटा-



६ पं० गिरधारीलाल शर्मा ( तारानगर ) ; आप भागवत आदि के सफल कथावाचक थे ।

१० पं० ईश्वरदास चावलिया ( तारानगर ) ; आप तारानगरमें आदि का कार्य करते थे । अब आपका देहान्त हो गया है ।

११ पं० रूपराम शर्मा ( देवगढ़िया )

१२ श्री पं० सीताराम शर्मा ( नोहर ) ; आयुर्वेद भूषण, आयुर्वेदा H.M.B। आपने कलकत्ता में धन्वन्तरि औषधालय खोलकर जनता-जनांगन खासी सेवा की थी । आपकी औषधियाँ विदेशों तक जाया करती हैं । कई औषधें गवर्नमेण्ट से रजिस्टर्ड भी हैं । आप ज्योतिषी भी थे । आपका हो गया है ।

१३ पं० छज्जूराम शर्मा ( तलुण्डी ) ; आप पहले अध्यापन-कार्य कर हैं । आजकल व्यापार करते हैं ।

१४ श्री पं० बलभद्र शर्मा ( तारानगर ) ; लघुकौमुदी, रघुवंश, कुमारसंभव । आप तारानगर के कर्मठ व्यक्ति थे । तारानगर मिडिल स्कूल संस्कृताध्यापक थे । अब आपका देहान्त हो गया है ।

१५ पं० रामलाल शर्मा ( कलाना ) ; लघुकौमुदी, श्रीमद्भागवत । आप कलाना में पाण्डित्य-कार्य द्वारा जन-सेवा कर रहे हैं ।

१६ श्री पं० मुरलीधर शर्मा ( तारानगर ) ; आप तारानगर के प्रसिद्ध संगीतज्ञ हैं ।

१७ पं० जुगल किशोर शर्मा ( तारानगर ) ; आप आजकल राष्ठी ( बिहार ) में वैद्यक कर रहे हैं । इससे पूर्व तारानगर एवं बलरामपुर ( बंगाल ) में भी चिकित्सा-कर्म कर चुके हैं ।

१८ पं० परशुराम शर्मा साँखोलिया ( तारानगर ) ; आप तारानगर में पाण्डित्य-कार्य कर रहे हैं ।

१९ पं० महादेव प्रसाद शर्मा ( तारानगर ) ; आप कर्मकाण्डी एवं कथा-वाचक हैं ।

२० पं० श्रीगोपाल आचार्य ( तारानगर ) ; आप कलकत्ते में व्यापार करते हैं ।



श्री हीरालाल चौधरी

मैनेजर लखनऊ—

श्रीधर आर्यल मिल् लि०, बनारस, श्रीधर राईस एण्ड हार्ड वुड लि०, बनारस ।

हीरालाल देवीप्रसाद लि०, बनारस ।



१—श्री वंशीधर जी मंत्री । २—श्री देवचन्द्र जी मंत्री ।  
३—श्री केदारमल जी मंत्री । ४—श्री नरनारायण जी मंत्री ।



श्री महावीरसाह जी कन्दोई ।

२१ पं० कन्हैयालाल शर्मा ; आपने सरदार शहर में पाण्डित्य-कार्य  
बन्धी ख्याति एवं धन प्राप्त किया है ।

२२ हरखचन्द्र दाधीच ; आप तारानगर में वैद्यक कर रहे हैं ।

२३ पं० दयाकृष्ण व्यास ; तारानगर में कर्मकाण्ड का कार्य कर रहे हैं ।

२४ पं० रामचन्द्र व्यास ; आप बनारस, देहली एवं बम्बई में व्यापार  
कार्य कर रहे हैं ।

२५ बालकनाथ स्वामी वैद्य ; आप सरदार शहर में आयुर्वेद पद्धति  
विक्रिसा-काय करते हैं ।

२६ पं० रामेश्वर शर्मा ( गांधी ) ।

२७ चन्द्रराम शर्मा ( चंगोई ) ; आप तारानगर में कर्मकाण्ड कर रहे हैं ।

२८ पं० ज्येष्ठानन्द पुष्करणा ( बाँय ) ।

२९ पं० गिरधारीलाल शर्मा ( नोहर ) ; ज्योतिषशास्त्री, देवगंधर्व  
संस्थानीय । आप ज्योतिषशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित हैं । आपका  
पञ्चाङ्ग १८ वर्ष से निकल रहा है ।

३० पं० जयनारायण बावलिया ( तारानगर ) , आप आयुर्वेद का  
करते हैं ।

३१ डा० गुलजारीलाल एल. एम. एम. ; आप सरकारी अस्पतालों में  
टाक्टर रह चुके हैं । लोयलका हास्पिटल विलानीमें भी टाक्टर रहे हैं । नेत्र-  
विकिसक भी थे । आपने वैदिक संहिता का भी अध्ययन किया था । अब आरडा  
वर्गवास हो गया है ।

३२ पं० कन्हैयालाल शर्मा ( भुवाड़ी ) ; आप स्वतन्त्र व्यवसाय करने हैं ।

३३ पं० नागपण्दन शर्मा ; आप 'मुंगेर' में वैद्यक कर रहे हैं ।

३४ पं० भोलाराम शर्मा ; आप बरह में अध्ययन कर चुके हैं । आपका  
पाण्डित्यकर्म कर रहे हैं ।

३५ पं० धीराम शर्मा वैद्य ( बरह ) ; आप बरह में वैद्यक कार्य  
कर रहे हैं ।

३६ पं० जगन्नाथ शर्मा (चंगोई); आप तारानगर में फर्मकाण्ड काम करते हैं।

३७ पं० रामप्रताप शर्मा (देवगढ़िया); आप व्यापार-कार्य करते हैं।

३८ पं० भूरावल शर्मा; आप अनगुल (कटक) में ठाकुरवाड़ी में काम कर रहे हैं।

३९ पं० गोपीराम महर्वाल; आप आसाम में व्यापार करते हैं।

४० पं० उमाशङ्कर शर्मा A. S. V. (तारानगर); व्याकरण मध्यमा (बनारस), आयुर्वेदाचार्य (विद्यापीठ)। आप सरदार शहर में चिकित्सा कर रहे हैं। सरदार शहर में सार्वजनिक संस्थाओं में उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर हैं। इससे पूर्व रंगून में चिकित्सा-कर्म कर चुके हैं। राजस्थान प्रान्तीय कांग्रेस के सदस्य भी हैं।

४१ पं० हीरालाल शर्मा (तारानगर); आप जगत धानेदार हैं।

४२ श्री केशव प्रसाद गुप्त; आप एम. ए. एल. एल. बी. हैं। आजकल चूरु में वकालत कर रहे हैं। इससे पूर्व कई जगह वकालत कर चुके हैं।

४३ पं० राघवतमल मिश्र (तारानगर), आप तारानगर में पांडित्य-कार्य कर रहे हैं।

४४ पं० गोपीकृष्ण शर्मा (तारानगर); आप भादरा में अध्यापन-कार्य करते हैं। हास्य-रस के अच्छे कवि हैं। बीकानेर साहित्य-सम्मेलन भाद के आप स्वागतमंत्री थे।

४५ पं० डालूराम ओझा; आप कालिम्पोङ्ग में व्यवसाय कर रहे हैं।

४६ पं० रूपराम शर्मा (तारानगर); सिद्धान्तकौमुदी, शेखर, मनोर आयुर्वेदाचार्य (विद्यापीठ)। आप शङ्कर आयुर्वेद फार्मसी के अध्यक्ष हैं। चूरु चिकित्सा-कार्य करते हैं। चूरु वैद्य सभा के मंत्री हैं।

४७ पं० रामलाल मिश्र (तारानगर); आप तारानगर तहसील अर्जिनवीस हैं।

४८ पं० प्रेमराज व्यास (B. Com.); आप चटगांव में एक जूट फर्म के डाइरेक्टर हैं। सार्वजनिक संस्थाओं में भी काफी लेखे हैं।

४६ पं० जयचन्द्र शर्मा आयुर्वेदाचार्य ; आप सरदार शहर में वैद्यक रहे हैं।

४७ पं० श्री गजानन्द ज्योतिषी (तारानगर) ; आप तारानगर ज्योतिष-कार्य कर रहे हैं। आप संगीतज्ञ एवं कवि भी हैं।

४८ पं० गंगाविष्णु शर्मा (भादरा) ; आप आजकल लखनऊ विद्यालय में संगीतशास्त्र का उच्च अध्ययन कर रहे हैं।

४९ काशीराम शर्मा (तारानगर) ; आप तारानगर के अच्छे संगीतज्ञ हैं।

५० पं० गजानन्द शर्मा (धीरवास) ; आप धीरवास में मन्दिर में पुजारी हैं।

५१ बेगराज ब्रह्मचारी (भाभणी) ; आप शिवपाण्ड्ये की पवित्र भूमि योगाभ्यास कर रहे हैं।

५२ पं० नारायणदत्त शास्त्री प्रभाकर (तारानगर) ; आप तारानगर मिटिल स्कूल में संस्कृताभ्यापक के पद पर कार्य कर रहे हैं। तारानगर सांस्कृतिक संघों में आप उच्च पदा पर हैं।

५३ पं० रामजीलाल शर्मा (धीरवास) ; आप मुन्दावन में पाण्डित्यकर्म करते हैं।

५४ पं० शिवनारायण शर्मा (बाँय) ; आप मिरगा में ज्योतिष-कार्य करते हैं।

५५ पं० गजानन्द शास्त्री (तारानगर) ; आप नारामर मिटिल स्कूल में संस्कृताभ्यापक हैं।

५६ पं० पुष्करदत्त शास्त्री (कालुवास) ; आप दूधवागगा संस्कृत-विद्यालय में प्रधानाभ्यापक हैं।

५७ पं० महावीर शर्मा (तारानगर) ; आप मोटरो द्वारा व्याकरण करते हैं।

५८ पं० शिवनन्दन शर्मा (गाँधी) ; आप 'रोड इन्स्टीट्यूट' के पढ़ाए करते हैं।

५९ पं० रामनन्द ब्रह्मचारी ; आप कच्छीय विद्यालय में शिक्षक रहते हैं।

६० पं० ... ..

- ७६ पं० दुर्गादत्त शर्मा ; काशी व्याकरण मध्यमा पास कर, आजकल अध्यापन-कार्य करते हैं ।
- ७७ पं० सागरमल शर्मा ; आप दार्जिलिंग में व्यापार करते हैं ।
- ७८ पं० मदनलाल वावलिया (काशी प्रथमा) ; आप तारानगर तहसील में मुंसोपद पर कार्य करते हैं ।
- ७९ पं० चद्रोप्रसाद शर्मा ; काशी साहित्य मध्यमा, आप आजकल अध्यापन-कार्य करते हैं ।
- ८० पं० धनवारीलाल शर्मा ; आप (काशी व्याकरण मध्यमा पास कर), नोहर कांग्रेस दफ्तर में कार्य कर रहे हैं ।
- ८१ सत्यनारायण शर्मा ; आप धीरवास में स्वतन्त्र व्यवसाय करते हैं ।
- ८२ पं० दीपचन्द्र शर्मा ; आप जाट हाई स्कूल संगरिया में संस्कृताध्यापक-पद पर कार्य कर रहे हैं ।
- ८३ पं० पुष्करदत्त वावलिया ; विहारद, विद्याभूषण, संस्कृत व्याकरण मध्यमा (धनारस), आप अंग्रेजी का उच्च अध्ययन करते हैं । अष्टोपेन्द्र और श्वि भी हैं ।
- ८४ पं० रामकुमार शर्मा वैद्य ; आप आजकल 'मियावानी' में बेतक कर रहे हैं ।
- ८५ पं० महावीर प्रसाद वावलिया ; आप 'महाजन' में अगान धानेश्वर हैं ।
- ८६ पं० मीताराम शर्मा ; आप तारानगर धर्मार्थ औरतक में अरिप पद पर कार्य कर रहे हैं ।
- ८७ पं० उदयचन्द्र शर्मा ; आप तारानगर में विज्ञान-कार्य करते हैं ।
- ८८ राधाकृष्ण शर्मा ; आप अध्यापन कार्य करते हैं ।
- ८९ पं० अमरचन्द्र शर्मा ; आप गङ्गानगर में अध्यापन कार्य करते हैं ।
- ९० श्री आशाराम गुप्त ; आप तारानगर में विज्ञान-कार्य करते हैं ।
- ९१ पं० बृहस्पति शर्मा ; आप अरिपक में अध्यापन कार्य करते हैं ।

१५५ संज्ञासूची का अन्वयन कर रहे हैं। भाग-पठ लेखन में आधुनिक

७५ संज्ञासूची विषयमय ; साहित्य व्याकरण शास्त्री, आधुनिक विद्यालय; भाग आठ-

अथ संज्ञासूची में पाठित्य एवं निजी व्यवसाय करते हैं।

७४ पं० श्रीराम शर्मा ; आष फलकवा ऐतिहासिकशास्त्र की कल्पना

७३ पं० राजमोहन शर्मा ; आष विहार में निजी व्यवसाय करते हैं।

हैं।

७२ श्रीराम चक्रवर्ती (वाराणसी) ; आष फलकवा ऐतिहासिकशास्त्र की कल्पना

करते हैं।

७१ श्री ० नरसिंहदेव शर्मा ; आष वैजपुर (अजमेर) में अजमेर

में अन्वयन करते हैं तथा श्री ० परीक्षा की तैयारी करते हैं।

७० पं० विठ्ठल शर्मा उपाध्याय (वाराणसी) ; आष वाराणसी में निजी

११ में सजीव-काम करते हैं।

संगीत हैं। आष कई बार 'रेडियो' पर भी गा चुके हैं। आष फलकवा

६९ पं० मोतीलाल शर्मा संगीतविश्वविद्यालय (वाराणसी) ; आष वाराणसी

करते हैं।

६८ पं० श्रीराम शर्मा (पुणे) (पुणे) ; आष पुणे में निजी व्यवसाय

करते हैं।

६७ श्रीराम शर्मा (पुणे) (पुणे) ; आष पुणे में निजी व्यवसाय

हैं।

६६ पं० रामशरण शर्मा (वाराणसी) ; आष वाराणसी में अजमेर

करते हैं।

६५ पं० नरसिंह शर्मा (गुवाहाटी) ; आष गुवाहाटी में अजमेर और ज्योति

करते हैं।

६४ पं० रामशरण शर्मा (कलकत्ता) ; आष कलकत्ता में अजमेर

१२ पं० श्रीराम शर्मा (पुणे) (पुणे) ; आष पुणे में निजी व्यवसाय



- ७६ पं० दृर्गादत्त शर्मा ; काशी व्याकरण मध्यमा पास कर, आजकल अध्यापन-कार्य करते हैं ।
- ७७ पं० सागरमल शर्मा ; आप दार्जिलिंग में व्यापार करते हैं ।
- ७८ पं० मदनलाल वावलिया (काशी प्रथमा) ; आप तारानगर तहसील में मुंशीपद पर कार्य करते हैं ।
- ७९ पं० घदरोप्रसाद शर्मा ; काशी साहित्य मध्यमा, आप आजकल अध्यापन-कार्य करते हैं ।
- ८० पं० बनवारीलाल शर्मा ; आप (काशी व्याकरण मध्यमा पास कर), नोहर कांग्रेस दफ्तर में कार्य कर रहे हैं ।
- ८१ सत्यनारायण शर्मा ; आप धीरवास में स्वतन्त्र व्यवसाय करते हैं ।
- ८२ पं० दीपचन्द्र शर्मा ; आप जाट हाई स्कूल संगरिया में संस्कृताध्यापक-पद पर कार्य कर रहे हैं ।
- ८३ पं० पुष्करदत्त वावलिया ; विशारद, विद्याभूषण, संस्कृत व्याकरण मध्यमा (बनारस), आप अंग्रेजी का उच्च अध्ययन करते हैं । अच्छे टेलर और कवि भी हैं ।
- ८४ पं० रामकुमार शर्मा वैद्य ; आप आजकल 'मियावाली' में वैद्यक कर रहे हैं ।
- ८५ पं० महावीर प्रसाद वावलिया ; आप 'महाजन' में जगात धानेश्वर हैं ।
- ८६ पं० सीताराम शर्मा ; आप तारानगर धर्मार्थ आश्रमालय में अग्र्येण पद पर कार्य कर रहे हैं ।
- ८७ पं० उदयचन्द्र शर्मा ; आप तारानगर में निजी व्यापार करते हैं ।
- ८८ राधाकृष्ण शर्मा ; आप अध्यापन कार्य करते हैं ।
- ८९ पं० अमरचन्द्र शर्मा ; आप गझानगर में ज्योतिष कार्य करते हैं ।
- ९० श्री आशाराम गुप्त ; आप तारानगर में निजी व्यापार कर रहे हैं ।
- ९१ पं० बृहस्पति शर्मा ; आप अजमेर शिवक आर गांधी में स्वतन्त्र वैद्यक कर रहे हैं ।



बीकानेर स्टेट के भूतपूर्व डायरेक्टर आफ एज्युकेशन व राजपूताना  
युनिवर्सिटी के वर्तमान रजिस्ट्रार

श्रीयुत् रायवहादुर मदनमोहन वर्मा एम० ए०

द्वारा

लिखित सम्मति

पाठशाला का निरीक्षण करके मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। यद्यपि समय कम था, फिर भी मैंने देखा कि पढ़नेवाले लड़कों की संख्या करीब ३० थी, लेकिन यह बताया गया कि पाठशाला में प्रविष्ट लड़कों की संख्या स्थिति से अधिक है। संस्था के संरक्षकों को चाहिये कि वे इसे परीक्षादि के लिए किसी सम्मानित संस्कृत-विश्वविद्यालय या कॉलेज से सम्बन्धित करवा लें। जब यह संस्था नियमित एवं व्यवस्थापूर्ण तरीके से काम करने लग जायेगी, तब सम्भवतः ऐसी स्थिति में गवर्नमेन्ट भी इसे कुछ सहायता देने लगेगी।

हस्ताक्षर एम० एम० वर्मा

२८-११-२७

बीकानेर स्टेट के भूतपूर्व प्राइम मिनिस्टर

श्रीयुत् मान्धातासिंह जी

द्वारा

लिखित सम्मति

पं० गोवर्द्धन प्रसादजी द्वारा संचालित संस्कृत-पाठशाला का निरीक्षण करके मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। रजिस्टर में छात्रों की संख्या ३३ है। ११ छात्रों को राहर के महाजनो द्वारा सहायता दी जाती है। शेष छात्रों का प्रबन्ध उनके अभिभावकों या सम्बन्धियों द्वारा किया जाता है। मैं चाहता हूँ कि यह संस्था अपने कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त करे।

कैम्प रेणी।

२६-२-२८

हस्ताक्षर—मान्धाता सिंह

बीकानेर स्टेट के भूतपूर्व सीकान

श्रीयुत् सिरेमल वापना

द्वारा

लिखित सम्मति

“मैं इस संस्था का निरीक्षण करके बहुत प्रसन्न हुआ। इस संस्था में ३० लड़के हैं।

२-११-२७

वर्मा





भालचन्द्र जी विश्वकर्मा



पं० गजानन्द जी पुजारी  
( भोरवाम )



श्री दास जी देशपांडे



श्री दास जी देशपांडे  
व्यवस्थापक निदेशक  
रिजिस्ट्रार कार्यालय कोरवाण  
( भोरवाम )

की उत्पत्ति पाती है।

पाठशाला की जो सेवा की है, उसके लिए वे पचाई के पात्र हैं। मैं इच्छा से  
होना हम सब के लिए खोजा की बात है। आचार्यक महोदयों ने शिक्षण  
" नहीं हुई है, सब प्रकार से सहोपाता करे। पाठशाला की आर्थिक अवस्था  
की, जो इस प्रकार में देवमाया के प्रचार के लिए सब कठिनाईयों को सहने  
होगी। इसलिये प्रत्येक भारतीय व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि इस  
देवमाया संकट के प्रचार से भारतीय संस्कृति और हिन्दूधर्म की रक्षा  
एवम् १०-४-७-४४ की राजस्थान-संस्कृत-विद्यालय देवने का श्रम-अवसर

लिखित सम्मति

द्वारा

श्रीमान् जे. एम्. ए. गौरीशंकर जी आचार्य

श्रीकांठ स्टेट के गवर्णमेण्ट शिक्षा एवं यात्रायात्रा मंत्री

श्रीकांठ

जयदेवस्टेट एवम् एजुकेशन

१४३१०२

जयलालसिंह

के पत्र पर अवसर हो रही है। परीक्षा-परिणाम प्रयोजनीय है।

वर्तमान मुद्रणार्थक के परिश्रम और उत्साह के कारण यह पाठशाला  
आज मुझे संकट-पाठशाला के कार्य का निरीक्षण करने का सुयोग प्राप्त

लिखित द्वारा काठेव श्रीकांठ द्वारा लिखित सम्मति

श्रीमान् जे. एम्. ए. गौरीशंकर जी आचार्य एम्. ए. ए. ए.

श्रीकांठ स्टेट के गवर्णमेण्ट शिक्षा विभाग

# श्री राजस्थान संस्कृत विद्यालय का संक्षिप्त इतिहास

स्थापना—पौष सुदी २ विक्रम संवत् १९५६

एक शुभ मिति को श्रद्धेय पं० गोवर्द्धनप्रसाद जी शास्त्री ने विद्यालय की स्थापना श्री कल्याणराय जी के मन्दिर में की और वर्तमान में भी वह वही है।

विद्यालय उस परम पिता शंकर की असीम अनुकम्पा से अपने जीवन के सुदीर्घ ५० वर्ष समाप्त कर ५१ वें वर्ष का शुभ प्रभात देख रहा है। इस सुदीर्घ काल में विद्यालय-संचालन में जो कठिन परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं, वे सुयोग्य संचालक की कर्मण्यता एवं कार्य-सम्पादन-कुशलता के कारण दूर हो गईं। फलस्वरूप आज भी उनके शिष्यवृन्द पूण विद्वान होकर स्वदेश की इस विषम परिस्थिति में भी उत्तरदायित्वपूर्ण पदों का भार वहन कर रहे हैं।

## उद्देश्य

विद्यालय का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण एवं स्थानीय ४ वर्णों के गरीब, दयनीय तथा असमर्थ छात्रों को भोजन, वस्त्र, एवं पुस्तकादि उपयोग सामग्री एवं व्याकरण, साहित्य, न्यायादि की उच्चतम शिक्षा देकर होनहार नागरिक तैयार करना ही है। साथ-साथ हिन्दी, गणित, इतिहास, भूगोल, आदि की भी शिक्षा दी जाती है।

सन् ३८ के पहले वेदादि सभी शास्त्रों की प्राचीन पद्धति के अनुसार शिक्षा दी जाती थी। बाद में बीकानेर गवर्नमेन्ट से सम्बन्धित होने पर परीक्षा अनिवार्य कर दी गयी। अभी भी वही क्रम चालू है। विद्यालय सार्वजनिक संस्था है, इसका कार्य दानवीर सज्जनों की सहायता से ही चलता है। कलकत्ता-बंगाल संस्कृत एसोसियेशन एवं गवर्नमेन्ट संस्कृत-कालेज बनारस की परीक्षार्थ दिक्षाएँ जाती हैं। साथ-साथ गोरखपुर, शिक्षा-विभाग राजस्थान एवं साहित्य-सम्मेलन बीकानेर की भी परीक्षाएँ दिलाई जाती हैं। इसका हिसाब राजस्थान-गवर्नमेन्ट देखती है। आय-व्यय एवं छात्रों की मासिक रिपोर्ट भी शिक्षा-विभाग में भेजी जाती है। विद्यालय की विशेष जानकारी के लिये पृथक् विचार-पत्रिका टिप्पणी प्रकाशित करवाने का विचार है। तद्वि भी परिणतजी के जीवन से विद्यार्थ्य का विशेष सम्बन्ध होने के कारण प्रधान प्रातःपत्र लिखना अनिवार्यक न होगा। आजकल विद्यालय के अन्तगत एक गेट हिन्दी छात्रों के लिये खुला भी चलता है।





# श्री राजस्थान संस्कृत विद्यालय का

## संक्षिप्त इतिहास

स्थापना—पौष सुदी २ विक्रम संवत् १९५६

एक शुभ मिति को श्रद्धेय पं० गोवर्द्धनप्रसाद जी शास्त्री ने विद्यालय की स्थापना श्री कल्याणराय जी के मन्दिर में की और वर्तमान में भी वह वही है।

विद्यालय उस परम पिता शंकर की असीम अनुकम्पा से अपने जीवन के सुदीर्घ ५० वर्ष समाप्त कर ५१ वें वर्ष का शुभ प्रभात देख रहा है। इस सुदीर्घ काल में विद्यालय-संचालन में जो कठिन परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं, वे सुयोग्य संचालक की फर्मण्यता एवं कार्य-सम्पादन-कुशलता के कारण दूर हो गईं। फलस्वरूप आज भी उनके शिष्यवृन्द पूण विद्वान होकर स्वदेश की इस विषम परिस्थिति में भी उत्तरदायित्वपूर्ण पदों का भार वहन कर रहे हैं।

### उद्देश्य

विद्यालय का मुख्य उद्देश्य प्राचीन एवं स्थानीय ४ यणों के गरीब, दयनीय तथा असमर्थ छात्रों को भोजन, वस्त्र, एवं पुस्तकादि उपयोग सामग्री एवं व्याकरण, साहित्य, न्यायादि की उच्चतम शिक्षा देकर होनहार नागरिक नैवार करना ही है। साथ-साथ हिन्दी, गणित, इतिहास, भूगोल, आदि की भी शिक्षा दी जाती है।

सन् ३८ के पहले वेदादि सभी शास्त्रों की प्राचीन पद्धति के अनुसार शिक्षा दी जाती थी। बाद में श्रीकानेर गवर्नमेन्ट से सम्बन्धित होने पर परीक्षा भविष्य कर दी गयी। अभी भी वही क्रम चल रहा है। विद्यालय सार्वजनिक संस्था है, इसका कार्य दानवीर सज्जनों की सहायता से ही चलता है। कल्याण-राय जी के पुत्र एसोसिएशन एवं गवर्नमेन्ट संस्कृत-काठेज बनारस की परीक्षा-दियायी जाती है। साथ-साथ गोरखपुर, शिक्षा-विभाग राजस्थान एवं लखनऊ-सम्बन्धित श्रीकानेर की भी परीक्षाएँ दिलाई जाती हैं। इसका हिलाह राजस्थान-गवर्नमेन्ट से होता है। आय-व्यय एवं छात्रों की सांख्यिक रिपोर्ट की शिक्षा-विभाग में भेजी जाती है। विद्यालय की विशेष जानकारी के लिये इसके विवरण-पत्रिकाएँ भेजी जा सकती हैं। तदर्थ जो व्यक्ति को चाहिए उसे भेजना ही विशेष सम्बन्ध होने के कारण प्रदान किया जा सकता है। विद्यालय के अन्तर्गत एक स्टेट हिन्दी प्रदर्शन मंच भी चल रहा है।



# वार्षिक सहायकों की नामावली

1. श्री राजस्थान गवर्नमेन्ट शिक्षा-विभाग  
बीकानेर ३००)
2. श्री पुरपचंदजी बंशीधर जी  
मंत्री कालिम्पोंग ६९)
3. श्री कादराम जी भोंकारमल जी  
शारदा ईश्वरपुर ५०)
4. श्री थोरमल जी पेड़ीवाल  
महाबीर भोयल राइस मिल्स  
फारविसगञ्ज २५)
5. श्री नागरमल जी पेड़ीवाल  
C/O श्री गणेशदास हजारीमल  
फूलहाट, दिनाजपुर २५)
6. श्री गिरिधारीलाल जी मुँदड़ा  
पञ्चाल बल्लावरमल, दिनाजपुर २५)
7. श्री रामजीलाल जी सोनी  
इस्टन कम्पनी लिमिटेड, मिर्जापुर २५)
8. श्री मोतीलाल जी सरावगी  
बमनाथर मोतीलाल, फलकता २५)
9. श्री भोंकारमल मंत्री कालिम्पोंग १२)
10. श्री म्युनिसिपल बोर्ड, तारानगर २४)
11. श्री छगनलाल जी बागड़ी, राजगढ़ १२)
12. श्री श्रीलालजी खेमाणी, तारानगर ५)
13. श्री महाबीर प्रसाद सरावगी  
जलपाईगुड़ी ५)
14. श्री महाबीर प्रसाद मंत्री, कालिम्पोंग ५)
15. श्री मदनलाल मंत्री, कालिम्पोंग ५)
16. श्री चम्पालाल सरावगी  
सरावगी एन्ड को० जलपाईगुड़ी १॥)
17. श्री गजानन्दजी खेमाणी, दार्जिलिंग ३)
18. श्री कुल्लेश जी चौधरी, तारानगर ३)
19. श्री जगन्नाथ रामप्रसाद जोड़ीवाल  
तारानगर ३)
20. श्री जुगलकिशोर जी शारदा.  
तारानगर ३)

(१९९॥)

श्री बीकानेर गवर्नमेन्ट ने विद्यालय की आर्थिक स्थिति एकदम कमजोर होकर इसकी प्राचीनता, उपयोगिता एवं आवश्यकता का अनुभव कर अपनी मासिक सहायता १०) रुपये से २५ रुपये घटि करके उदारता का परिचय दिया है।

संवत्	आय	व्यय	विवरण
१९५६ से		१३०१०)॥	
१९६५ तक	१३६०॥॥)		
१९६६ से		१६०५)	
१९७५ तक	१०००)		२००६ ५६
१९७६ से		५५६१५)॥	०१०००)
१९८६ तक	५०५६॥०)		
१९८६ से		२०००)	
१९९५ तक	३८२५॥०)॥		
१९९६ से		१९९९६०॥	
२००६ तक	१०२६९॥०)॥		
		१००१००)॥	

१००१००)॥



संख्या	नामावली	तादात्	संख्या	नामावली	तादात्
११.	श्री बालकृष्ण जी मनाजी	⇒	५३.	श्री नेनराम जी पसारी	⇒
१२.	„ गोगराज जो जालान 'बूख'	1)	५४.	„ मुरलीधर फतेहपुरिया	⇒
१३.	„ कुलछतरदास जी चौधरी	1)	५५.	„ नारायणदास जी फतेहपुरिया	⇒
१४.	„ सोहनलाल सगतापी	⇒	५६.	„ गुलाबचन्द कुनणमल	⇒
१५.	„ मिरजामल हनुमान प्रसाद	⇒	५७.	„ रिखाराम चगोइवाला	⇒
१६.	„ मुकुन्दलाल जी सगतापी चाचल	⇒	५८.	„ दूनीचन्द सागरमल	⇒
१७.	„ महादेवप्रसाद केसरीचन्द	⇒	५९.	„ बैजमल भक्त	⇒
१८.	„ कुरकामल महादेव	⇒	६०.	„ कुलछतरदास महाबोर सरावगी	⇒
१९.	„ शिवप्रसाद भूरामल	⇒	६१.	„ आईदान लिखमीचन्द	⇒
२०.	„ नथमल जी सगतापी चाचल	⇒	६२.	„ सुगनचन्द सरावगी	⇒
२१.	„ बदरीनारायण जी कंदोई	⇒	६३.	„ छोगमल आशाराम	⇒
२२.	„ रूपलाल जी कंदोई	⇒	६४.	„ धीराम रामेश्वर	⇒
२३.	„ पुरपचन्द बंशीधर	⇒	६५.	„ पितरुराम धीरवासिया	⇒
२४.	„ टीकमचन्द फूलचन्द कंदोई	⇒	६६.	„ गुरजमल पेड़ीवाल	⇒
२५.	„ प्रेमराज जी कंदोई	⇒	६७.	„ मोतीलाल पेड़ीवाल	⇒
२६.	„ जैनरूपजी कंदोई	⇒	६८.	„ रामनारायण पेड़ीवाल	⇒
२७.	„ हरखचन्द जी कंदोई	⇒	७९.	„ भगवान दास बदरीदास	⇒
२८.	„ महादेव प्रसाद कंदोई	⇒	८०.	„ गीरीशकर चौधरी	⇒
२९.	„ धनराज कंदोई	⇒	८१.	„ महाबोर गुनार	⇒
३०.	„ आईदान जी जोधाणी	⇒			
३१.	„ नथमल जी शेमाणी	⇒			

(१३॥)

विशेष :—

उपरोक्त चन्दादाताओं में कितने ही सज्जनों का चन्दा ४-५ वर्ष से प्राप्त नहीं हुआ, अतः भिन्नबाने की उदारता करें।

### विशेष

उपरोक्त वार्षिक सहायकों में कितने ही सज्जनों की सहायता ३-४ वर्ष से प्राप्त नहीं हुई है। अतः भिन्नबाने की उदारता करें।

### विशेष सहायता

विद्यालय वन सभी भोषानों का हरव से पर लन-मन-धन से कदावका की

समय-समय  
की सहायता



में आयुर्वेद-परिषद् के अध्यक्ष-पद को सुशोभित कर चुके हैं। जीवन के आप यथार्थ द्रष्टा हैं। और इसी यथार्थवादिता ने परम्पराप्रेमी पण्डित समाज का विशिष्ट सदस्य होने पर भी प्रतिक्रियावादी होने से आपको बचा लिया। आप में प्रौढ़ पाण्डित्य के साथ विद्रोह की ज्वलन्त चिनगारियाँ भी हैं। आप नवीन और प्राचीन के संगम पर जीवन के एक तीर्थ का निर्माण कर रहे हैं।

अगर कठोर कर्मठता का अभाव नहीं होता, तो वे आज हमारे प्रान्त का निश्चय नेतृत्व करते होते। शरीर के विशेष तो हैं ही, परन्तु मनोजगत् भी आप के लिये अगम्य नहीं है। आयुर्वेद की आराधनाने यद्यपि साहित्य की साधना को आक्रान्त कर लिया है, पर आपका कवि अद्य भी जीवित है। सरदार शहर है अग्रगामी सार्वजनिक जीवन के आप अग्रणी हैं, स्थानीय प्रजापरिषद् के उपाध्यक्ष हैं, और राजपुताना रीजनल कौंसिल में तहसील के प्रतिनिधि हैं। तारानगर के नागरिक होने पर भी सरदारशहर का आपने अपना कार्य क्षेत्र बना लिया है, परन्तु तारानगर के प्रति भी आप सर्वथा जागरुक हैं। स्थानीय सेवा-समिति-औषधालय है आप प्रधान वैद्य हैं।

मूलनन्द सेठिया

जनवरी १९४६







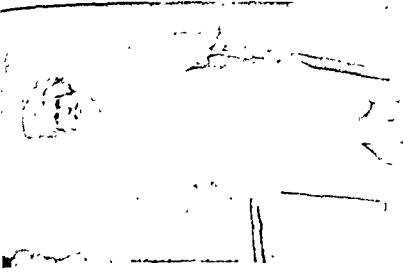




पं० नवरंग राय जी शास्त्री



पं० गोपाळपन्त्र जी शास्त्री





सहस्रनाम ॥

सप्तशतपञ्चमोऽध्यायः । श्रीकृष्णचरितम् ॥  
सुमनां त्रिभुवनः प्रदीपमानमात्मः सः । प्रथमं च  
मनीषु-वृत्तान्तम् । यत्प्रदीपमानमात्मः सः

विद्यते चित्तम् ।

विद्यते चित्तम् । सुमनां त्रिभुवनः प्रदीपमानमात्मः सः ।  
सुमनां त्रिभुवनः प्रदीपमानमात्मः सः । प्रथमं च  
मनीषु-वृत्तान्तम् । यत्प्रदीपमानमात्मः सः

श्री कृष्णचरितम् । श्रीकृष्णचरितम् । श्रीकृष्णचरितम् ।

( अथ ) श्री कृष्णचरितम् । श्रीकृष्णचरितम् । श्रीकृष्णचरितम् ।

श्री कृष्णचरितम्:

अथ श्रीकृष्णचरितम्: श्रीकृष्णचरितम्: श्रीकृष्णचरितम्:

वैद्य कुलपति, सफल अध्यापक  
श्रीमान् पं० मणिरामजी शास्त्री

भियगाचार्य, भिपद्मणि,

अध्यक्ष

श्री हनुमान आयुर्वेद महाविशालय  
रत्नगढ़ ( पोकानेर )

“श्री पं० गोवर्द्धनप्रसाद जी शास्त्री ने निरन्तर ५० वर्षों तक सुरभारती की जो अनुपम सेवा की है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। ऐसे महापुरुषों की स्वर्ण जयन्ती होनी भारतीय संस्कृति के सर्वथा अनुकूल है। इस अवसर पर मैं अपनी हार्दिक शुभकामना समर्पित करता हुआ आपकी हीरक जयन्ती के लिए भगवान् से प्रार्थना करता हूँ।

भवदीय—

वै० मणिराम शर्मा



इसारे प्राचीन संस्कृत विद्यालय

पं. विशाखर गोरेजी, विद्यारण्य एम० ए०

प्रधान संस्कृतविद्यालयक इंडियन कॉलेज, बौकानेरे

कालस्य तस्य स्मृतिरेव रसुया बोधाय बौध्या भवतिभयमिभम् ।

विद्ययाज्ञेयं महतीं वृत्तानां संस्थापय विद्या यद्व्याप्यतेऽद्य ॥१॥

परम ह्ययं हे कि आज विद्वान् भवत, परम सर्व्वेयं पं श्री गोवर्द्धन-

पं श्री गोरेजी की सेवा में भक्ति-पूजाखिलि समर्पण के साथ इसारी

विद्यालय संस्कृत परम्परा पर श्री लिखने का यह महनीय अवसर

०१ है ।

संस्कृत भाषा के अग्रणीजन से जिन गुणों का विकास जीवन में

१०१ है, उनका प्रत्यक्ष दर्शन करना ही ही साम्प्रदाय का जीवन इसारे

एक आदर्श जीवन है । प्रतिक्षण भाषा-म-संस्कृत, शास्त्र-विद्वान्

पं धार्मिक विधि में विद्वान्-रहकर अध्ययन अध्ययन द्वारा

का कल्याण करना, यही संस्कृत के विद्वानों का सपना है महोदय

है ।

संसार के पाणिनीयस्य से दूर रहकर साधारण जीवन अपना देना

१०१ आदर्शकार्यों का निष्पत्तिव रचना देना एक साधारणिक

जीवन है ।

इसारे चरित नायक में इन सय गुणों का एक प्रतिमान प्रतिपत्ति

१०१ की विद्या है । ऐसे गुणवर्तों के पास जो ध्यान अध्ययन करते

उत्तम मनीषादीर्घजीव स्वभाव उत्कृष्ट विद्वान् होते हैं । और ऐसे

१०१-साम्प्रदाय में रहते हैं जो मोक्ष को पं एक धार्मिक जगत्प्राण

प्राण करते हैं ।

इसारे प्राचीन भाषा विद्वान् प्राचीन भाषा विद्वान् प्राचीन भाषा विद्वान्

१०१ की सपना अधिकांशतः प्राप्त करना था । आज का ध्यान वैदिक

१०१-इसारे प्राचीन भाषा विद्वान् प्राचीन भाषा विद्वान् प्राचीन भाषा विद्वान्

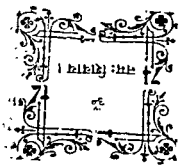
१०१-इसारे प्राचीन भाषा विद्वान् प्राचीन भाषा विद्वान् प्राचीन भाषा विद्वान्



मानव जीवन में आवश्यकता इस बात की है कि इसमें विशालता नम्रता, उदारता, और आत्मानुभूति के साथ, संकुचित वृत्ति, उद्वेगता और अहम्मन्यता के साथ रहने वाली मूर्खता का नाश हो। आजकल की शिक्षा कहने को तो शिक्षा प्रसार करती है, परन्तु शिक्षा का जो अन्तिम ध्येय है, उसकी पूर्ति वह नहीं कर पाती। हमारे प्राचीन संस्कृत विद्यालयों की यह विशेषता है, कि वे अपनी सीमित शक्ति के कारण यद्यपि एक साथ ही नाना विषयों के ज्ञान से छात्र को पूर्ण नहीं कर सकते, पर मनुष्यता के लिये जिन गुणों की आवश्यकता है उनका विकास वे अवश्य कर देते हैं।

प्राचीन संस्कृत विद्यालयों में गुरुद्रोहो होना एक सबसे भयंकर दोष था। इसके अतिरिक्त उन विद्यालयों के छात्र प्रातः, सायं, सन्ध्या, घन्दन आदि भी अवश्य करते थे, और अपने कार्यों को घाटी-घाटी से अपने आप करने में किसी प्रकार का भी सङ्कोच नहीं करते थे। फलतः, उस समय का छात्र, गुरुभक्त, नम्र, भगवद् भक्त, एवं आलस्य शून्य होता था।

आजकल के सेवा प्राम आदि आदर्श विद्यालयों में भी यही सिखाया जाता है, कि छात्र अपने काम को अपने आप ही करना सीखें पर इस प्रकार के आदर्श विद्यालयों को छोड़, अंग्रेजों के अन्य विद्यालयों में शिक्षा के आदर्शों की जो दशा हो रही है, वह सर्वथा दयनीय है। वही के छात्र पात-पात में गुरुजनो की निंदा, हट्टाल अथवा आपस को पाटीपाजो में एक दूसरे के शत्रु बन सकते हैं, परन्तु जहाँ किसी की सेवा गुरुजनो के आदर, अथवा ईश्वर स्मरण की कोई बात है वही उनमें मनुष्यत्व के शतांश का भा दर्शन नहीं होता। अंग्रेजों के विद्यालयों में इन दुर्गुणों की भाङ्ग आ रही हो तो जानो रहे, परन्तु सबसे महान् श्रेष्ठ इस बात को है, कि इनका अनुकरण आजकल हमारे संस्कृत छात्रों में भी बहुत उप रूपमें बढ़ रहा है जो मन्त्रन आपाय प्रवर श्री गोवर्द्धनप्रसाद जी का अभिनन्दन करना चाहते हैं,



... ममः शिवाय ।  
 ... कि ममः शिवाय के अर्थ में शिव ही सबसे ऊँचे सत्त्व की शक्ति हैं। यह सब शक्ति का संचयन शिव ही की शक्ति में ही हो सकता है।

... शिव ही सबसे ऊँचे सत्त्व की शक्ति हैं। यह सब शक्ति का संचयन शिव ही की शक्ति में ही हो सकता है।

... शिव ही सबसे ऊँचे सत्त्व की शक्ति हैं। यह सब शक्ति का संचयन शिव ही की शक्ति में ही हो सकता है।

... शिव ही सबसे ऊँचे सत्त्व की शक्ति हैं। यह सब शक्ति का संचयन शिव ही की शक्ति में ही हो सकता है।

## श्रद्धांजलि

श्रीमती स्वर्णलता देवी एम० ए०

प्रिंसिपल—महारानी सुदर्शन कालेज, वीकानेर

श्री पं० गोबर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री का ५० वर्ष तक एक सार्वजनिक संस्था का संचालन और अध्यापन कार्य अति श्लाघनीय कृत्य है। आप संस्कृतके धुरन्धर विद्वान् हैं। श्री शास्त्रीजीने ऋषिकुल प्रणाली पर तारानगर में राजस्थान संस्कृत विद्यालय की स्थापना कर हमारी देवभाषाको मान प्रदान करते हुए साहित्य सेवा की है उसके लिये संस्कृत समाज चिरञ्जयी रहेगा। विद्यालयकी स्थापना कर के ५० वर्षों तक अवैतनिक सेवायें प्रदान करना आपके हादिक शिक्षा-प्रेम एवं आदर्श अध्यापक के गुणों का चोतक है। ऐसे आदर्श गुरु के लिये छात्रों में प्रेम एवं सद्भाव का उमड़ना स्वाभाविक-तया अचरित्यम्भावी है। पण्डित जी का जीवन अध्यापकवर्ग के लिये अनुकरणीय है तथा उनके शिष्यों की गुरुभक्ति विद्यार्थी गुरु के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित करती है। वर्तमान युग में इस प्रकार की संस्था व आदर्श गुरु शिष्य के मध्य ऐसी भावनाओं का बड़ा अभाव सा है। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि ऐसे महानु-भावांके जीवन से प्राप्त हुए वेरणा ऐसे अभावों को पूर्ति करे, श्रीशास्त्रीजी दीर्घानु हों, उनके अमंल्य शिष्य उत्तरोत्तर उन्नति की प्राप्ति होंगे हुए उनके गुणों का प्रकाशन करें।

—स्वर्णलता भद्रवाल





1877

THE UNIVERSITY OF CHICAGO  
DEPARTMENT OF CHEMISTRY  
RECORDS OF THE DEPARTMENT  
OF CHEMISTRY  
1877

THE UNIVERSITY OF CHICAGO  
DEPARTMENT OF CHEMISTRY  
RECORDS OF THE DEPARTMENT  
OF CHEMISTRY  
1877

वीकानेर राज्यस्य विख्यात विद्वांसः

आदर्श कवयः, धुरीणलेखका

श्री रामचन्द्र शास्त्रिणः.

एम० एल० ए०

विहागो मन्वृत्त विद्यालयाध्यक्षाः

संगरियामण्डोस्था ।

श्रीगोवर्द्धन स्वर्गजयन्ती महोत्सव स्वागत समित्याऽभिनन्दन प्रन्थ-  
प्रकाशनस्य यो हि श्लाघ्यः प्रयत्नोऽनुष्ठीयते, स यस्य सद्दयस्य सुरग-  
वीक्षणविद्यस्य स्वान्नोल्लासं नोपवृंहयति ।

इमेऽस्मच्छ्रद्धया श्रीगोवर्द्धनप्रसाद शास्त्रिणोऽभ्यप्रान्तस्य ख्यात-  
वदुष्याः सुवागिनः सत्प्रकृतिका विद्वांसः सन्ति । एभिरस्मिन् सकलेऽपि  
प्रान्ते चिरान् सद्वर्गस्य सर्वतोमुखः सत्प्रचारो विधीयते, सामाजिकी  
मुष्यवस्थिति मन्वाद्यितुं च महत् प्रयत्न्यते । संस्कृत समाजे जागर्ति-  
प्रचाराय चातीव चेष्टयते । आर्येण्यैक्यं साधयितुमापार्ष्णिमस्तकस्वेद-  
न्नावः क्रियते ।

वस्तुत-एतादृक्षा मौन कार्यकर्तारः केवलमद्गुलिपर्वस्वेव गणनीया  
अस्मत्प्रान्ते, ये हि स्वार्थं बाह्यप्रदर्शनं च परित्यज्य सर्वहितैपित्वेन  
कार्यं कुर्युः ।

अस्मत्प्रान्त एव किं मन्मते तु सुदूरेऽपि प्रान्ते नास्तिकश्चिदपि  
तादृक्षो यो हि गीर्वाणवाणीप्रचारे धर्मप्रचारे चास्मच्छ्रद्धेयानेतानति-  
शयितुं मीशीत ।

सद्वर्गनि.स्वार्थसेवकानां विविधविद्वच्छिद्यप्य ख्यापितयशासां पण्डित-  
प्रकाण्डानां सुवागिनां वयोवृद्धानां हानवृद्धानां चेतोपायभिनन्दनप्रन्था-  
र्पणेन सन्मानकरणं सर्वेषामपि एतात्प्रान्नपण्डितानामावश्यकं कर्तव्य-  
मासीद् यदनया स्वर्णजयन्ती महोत्सव समित्या सम्पाद्यैतत् प्रान्तीय-  
विद्वत्समाजे धर्मप्राणजनवर्गं चानुग्रहः प्रदर्श्यते ।

अहं परमेश्वरतो विद्वत्प्रचारागामेतेषां कुशलं दीर्घायुदृष्ट्वं च कामये ।

लेहाधीनो—

रामचन्द्र शास्त्री





## श्रीमान् पं० ओंकारनाथ जी लाटा

साहित्यायुर्वेदाचार्य प्र० संस्कृताध्यापक, सम्पत् दूगड़ विद्यालय,  
सरदार शहर

सम्प्रति संस्कृत भाषा परिशीलनासु साहित्यरसिकेषु शिक्षाप्रचाराय बद्धपरिकरेषु, शिक्षानुरागिषु, सनातनधर्मोद्धारणाय विहितोद्यमेषु धर्मप्रचारकेषु च सज्जनेषु के नाम वीकानेर राज्यान्तगत तारानगर निवासिनाम् सुगृहीत नाम धेयानां विद्वत्तल्लजानां श्रीमतां गोबद्धन प्रसाद शास्त्रिणां पुण्यचरित्रेण परिचिता न स्युः। एते महानुभावाः अस्यां भारतवसुन्धराया महाहरद्वम्। आशंशया देवते सुरभारती राष्ट्रभाषाश्च सेवमानाः पण्डित समाजे प्राकृतजनेषु च विपुलाकीर्तिमजितवन्तः एतैर्जायने सनातनधर्मसेवंध कर्त्तव्यत्वेन प्रधानी कृतेति कः खलु न वेत्ति। तारानगरीय राजस्थान संस्कृत विद्यालये प्रधानाध्यापकपदम् संस्थापकपदम् सञ्चालकपदम् चालकुर्वद्भिरेतरेष्वप्यपितावहवोऽन्तेवासिनः कृतविद्याः स्वपरीक्षामुत्तीय विभिन्न विद्यालयेषु सम्मानपूर्णस्थानमवाप्तुः गुरोर्महिमानं वदयामासुः संस्कृत प्रचारश्च विदधुः। विलक्षण भाषणशक्तिरेतेषाम् यद् विदग्धा अपि मुग्धा इव शृण्वन्ति श्रोतारोऽभिनन्दन्ति च सशिरः कम्पम्, श्रीमतां मुयोग्यौ तनयो उमाशंकराचार्य परमानन्द शास्त्रिणावपि देशसमाजसाहित्यसेवात्परो सवत्र सम्मानभाजौ-स्वपितु स्वस्य च यशः प्रसारयन्तीति महान् प्रमोदावसरः। वीकानेर राज्य साहित्य सम्मेलनस्य तारानगरीय पट्टाधिपंशने श्रीमता सहयोग. धर्मः समुत्साहश्च सम्यन्तेऽधुनापि। लाकालं हारभूता पण्डित धीरेषा कम्ठा अप्येते अष्टष्टाहंकाराः सौशौल्य विनय सन्तोष सौजन्यादि गुणरत्नानामाकर भूता आदर्श भूताश्च विराजन्ते इति नितरामादत्ते नो मानमम्। परमधर्मास्पदा धोमन्तः दीपमायुः स्वर्गं येषु मग्धा सर्वविध सुखसम्पत्तिश्चाधिगत्य यद्गुनि वर्षाणि भारतभुवमलं कुर्वन्तः विद्यायना मान मुन्नयन्तः सुरगिरः सवप्रकारायै सेवायै यथायद् बढादराः धर्मोन्नत्यं विहितमतयोऽप्रनानानन्द यन्तमुत्वं मनेधन्नाभिति नृ-योभूय. धी भगव-  
षरणेषु प्राथयामहे।

विद्वेयः

ओंकारनाथ लाटा



बीकानेर राज्य साहित्य-सम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष  
श्रीमान् पं० वट्टीप्रसाद जी आचार्य

प्रतिपल :—

ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम चूल्

आचार्य वर !

आपको स्वर्णजयन्ती महोत्सवपर अभिनन्दन-गन्ध समर्पित किया जा रहा है, उसके लिए मैं भी कुछ लिखूँ। बहुत ही इच्छा थी परन्तु ममयाल्पता से कुछ अस्वस्थता से लिख नहीं सका इसका मुझे आत्मिक खेद है।

देव !

आपके लिए जो मेरे हृदय में स्थान है, अथवा आपके पवित्र चरणों में जो मेरा अनुराग है, उसे भाषा के शुष्क शब्दों में किस प्रकार व्यक्त कर सकूँगा समझ में नहीं आता ! आपने सुरभारती की जो सेवा की है एवं अपनी जाति के मुख्य काम पठन-पाठनादि को जिस प्रकार निभाकर दिखाया है, उसे कौन भूल सकता है।

मान्यवर !

आपकी विद्वता, सहृदयता, सौम्यता एवं मिलनसारिता तथा परोपकारिता आदि गुणों की द्वाप किसपर नहीं पड़ी ? कौन आपके व्यक्तित्व से प्रभावित नहीं हुआ ? आप ही का यह आशीर्वाद है कि मुझ जैसा अकिञ्चन भी उत्तर-दायित्वपूर्ण पदों पर आसोन है !

पतितपावन, आभीरकन्या मनोरञ्जन गोवर्द्धनपारी से विनम्र प्रार्थना है कि वे आपको चिरायु करें।

आपका :—

वट्टीप्रसाद आचार्य



सफलता भी कुछ इन्हें मिली। परन्तु आपके ही विशेष पत्र-व्यवहार करने पर मंत्री शारदा चौधरी आदि ने आपके शिष्य होने के नाते ज्यादे से ज्यादे रकम दी जिसके फलस्वरूप ही सम्मेलन का पट्टाधिवेशन बीकानेर राज्य भर में अभूतपूर्व हुआ।

सम्मेलन के दूसरे दिन आपने आगत सज्जनों को अपने घर भोज दिया जिसमें शहर के भी काफी आदमी शामिल थे, उसमें ३००) ५० अन्दाज व्यय हुए। सम्मेलन के प्राणाधार होने पर भी आपके मुँहसे ऐसा नहीं मुना गया कि सम्मेलन में हमने ऐसा किया, वैसा किया ! वास्तव में भारत को आज ऐसे ही महापुरुषों की आवश्यकता है। आपके दो पुत्र हैं, दोनों ही विद्वान और सच्चरित्र हैं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आप चिरजीवी हो जिससे आनेवाली पीढ़ी भी आपसे बहुत कुछ सीख सके।

आपका .—

श्री प्रकाश गुप्ता



डा० पी. एन. कोचर

आपका—

आपकी विरजीवी कर, यही शिथकामना है।

संकर्षित स्थान-स्थान पर जन-सेवा कर रहे हैं। महत्त्वपूर्ण

ही है। आपके दो सुपुत्र हैं, दोनों ही योग्य एवं कर्मठ हैं।

किसे है। वारानगर की प्रत्येक सांख्यिक संस्था के जनसंदाता

के लिए अत्यधिक

स्थानीय नागरिकों से यह सुन कर बहुत आश्चर्य हुआ कि पञ्च

है।

का अभिप्रेत किया जा रहा है। यह हमारे लिए गौरव की

पर इसके सख्त एवं अत्यापक श्री पं गोवर्द्धन प्रसाद जी

जीवन के ५० वर्ष पूर्व कर ५२ वर्ष में प्रवेश कर रहा है। इसी

मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि श्रीराजस्थान संकेत विद्यालय

स्टेट इंस्टीट्यूट वारानगर (बीकानेर)

मैट्रिक ऑफिसर

पत्र सं० पी० ( सी० पी० ) पत्र सं० पी० ( पत्र सं० ) ( पत्र सं० )

श्रीमान् डाक्टर गोविन्द जी कोचर





சென்னை 15 சூன் 1981





## श्रीमान् रामस्वरूप जी वकील, अग्रवाल "आजाद" राजगढ़ ( बीकानेर )

सन् १९०१ ईस्वी में मेरे स्वर्गीय पिता जी श्रद्धेय जानकी प्रसाद जी मुंशी तारानगर ( रोनी ) में सध-इंस्पेक्टर पुलिस थे। मैं अपने देश यू० पी० में तारानगर उसी समय आया था। उस समय मेरी आयु १३ वर्ष की थी, श्रीमान् पं० जी की आयु १८-१९ वष की होगी। आपने तारानगर में करीब दो वर्ष पहले से श्रीराजस्थान संस्कृत विद्यालय खोल रखा था। हमारा भ्रान विद्यालय के पास ही था। ऐसा सुनहला अवसर पाकर मैं भी पूज्य पण्डित जी से हिन्दी पढ़ा करता था, जब से अबतक मेरे परिवार पर पण्डित जी की प्रभावशाली बनी हुई है।

पं० जी एक सात्विक विचार के सज्जन हैं। 'आत्मयत् सर्वभूतेषु' आपका प्रधान ध्येय रहा है। पूज्य पण्डित जी सभी शास्त्रों के ज्ञाता हैं। आपने सरसा फिरोजपुर, एवं बनारस में अध्ययन किया है। सत्य के प्रचार के लिए आपने बंगाल, बिहार, यू० पी०, मद्रास, उड़ीसा, बम्बई, आदि प्रान्तों का दौरा किया है। आप निर्भीक एवं स्पष्टवादी विद्वान् हैं।

आपके दो सुयोग्य पुत्र हैं, दोनों ही बड़े विद्वान्, मुशोख व देशभक्त हैं। आपके बड़े पुत्र पण्डित उभाशंकर जी आधुनिक के आचार्य हैं। छोटे पं० परमानन्द जी हैं, जो शास्त्री हैं, और कवि तथा लेखक भी हैं।

पं० जी की इस स्वर्णयन्त्री पर मैं शुभकामना भेज रहा हूँ। आशा है कि हीरकजयन्ती भी बड़ी धूमधामसे मनाई जायेगी।

भवदीय—

रामस्वरूप अग्रवाल "आजाद"



## कविराज पं० परमेश्वर प्रसाद वैद्य

आयुर्वेदाचार्य, प्रधान चिकित्सक सर्वजन हितैषी दातव्य औषधालय  
राजगढ़ ( बीकानेर )

मुझे यह जान कर अत्यन्त हृष हुआ कि श्रीराजस्थान संस्कृत विशालय के छात्र एवं स्नातक मण्डल ने अपने उत्तरदायित्व को समझ कर श्रीराजस्थान संस्कृत विशालय के संस्थापक श्रीमान् पं० गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री की अमूल्य जनहितकारी सेवाओं के उपलक्ष्य में उनके सम्मानार्थ श्री स्वर्णज्यन्ती मनाने की योजना की है।

यह महोत्सव शास्त्री जी की सेवाओं के मानने नगण्य है किन्तु सम्मानकर्त्ता कार्यकर्त्ताओं ने अपना कर्त्तव्य समझ कर यह गौरवपूर्ण कार्य किया है।

राजस्थान में जब चारों ओर अविद्या का अन्वकार फैला हुआ था तब आपने शिक्षा प्रचार के लिए श्रीराजस्थान योजन बन कर ज्ञान का प्रकाश फैलाना शुरू किया था। आज उन्हीं विशालय के सरुदा ज्ञानरु उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर कार्य करते हुए जन सेवा कर रहे हैं।

ईश्वर से प्रार्थना है कि यह शास्त्री जी के चलाये हुए कार्य का चिरस्थायी रखे तथा पूज्य शास्त्री जी को दीर्घायु प्रदान करे।

भवदीय—

परमेश्वर प्रसाद वैद्य



## श्रीमान् वैद्य भूरावल जी शर्मा आयुर्वेद विशारद

अध्यक्ष, तारानगर रिलीफ सोसायटी औषधालय ( तारानगर )

श्रीमान् पं० श्री गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री, राजस्थान के प्रकाण्ड विद्वान्, कर्मठ नेता एवं प्रतिष्ठित महापुरुष हैं। मैं आप से लगभग ४ वर्षों से परिचित हूँ। आप ५० वर्ष से श्री राजस्थान संस्कृत विद्यालय, के संचालक व अध्यापक-पद को अलंकृत कर रहे हैं। मैं आप के, सौजन्य वैदुष्य, प्रतिभासम्पन्नत्वादि किन-किन गुणों पर प्रकाश डालूँ ? आप सभी शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित हैं, तारानगर की प्रत्येक सार्वजनिक संस्थाओं के आद्य संस्थापक हैं। आप की योग्यता, काय-कुशलता एवं अध्यापनपटुता, प्रत्येक विद्वान् के लिए अनुकरणीय हैं। छात्रों के साथ आप का व्यवहार बहुत ही सुन्दर रहा है, इसी कारण विद्यालय में १५०० छात्र शिक्षा प्राप्त कर सफलतापूर्वक जीवनयापन कर रहे हैं।

आप के दो सुपुत्र हैं। ज्येष्ठ पुत्र कविराज श्री उमार्शंकर जी आयुर्वेदाचार्य हैं, जो कि सेवा समिति औषधालय सरदार शहर में प्रधान वैद्य के पद पर काम कर रहे हैं। आप सरदार शहर की तरफ से कई बार प्रतिनिधि बन कर भी बाहर गये हैं। यह तारानगर के लिए अत्यन्त गर्व की बात है।

कनिष्ठ पुत्र साहित्यालंकार कवि एवं कहानी-लेखक पं० परमानन्द जी शास्त्री स्थानीय विद्यालय में अध्यापन-कार्य कर रहे हैं। आप के कई एक रंग्रह प्रकाशित होने जा रहे हैं।

पूज्य पं० जी की अमल धवल कीर्ति शुभ्रज्योत्स्ना की भाँति भूतल पर प्रसरित रहेंगी। आप के जीवन की साथ सदा से यही रही है कि, किमो-न-दिसो तरह 'सनातनधर्म' एवं 'संस्कृत विद्या' का प्रसार हो। आप ने अपने अमूल्य जीवन को इस विद्यालय की चतुर्दिक्षु उन्नति के लिए अर्पण कर रखा है। स्थायी कोष न होने पर भी आप इसे अच्छी अवस्था में चला रहे हैं।

पं० जी के रचनात्मक कार्यों को एक क्षुद्र प्राणी क्या गिना सकता है, यही समझ कर केवल भक्तिभाव से ही आप के स्वर्णजयन्ती महोत्सव पर अपनी भद्राच्छुलियाँ अर्पित कर रहा हूँ तथा स्वर्ग से करबद्ध प्रार्थना करता हूँ कि आप का जीवनतक सदा पद्मवित, पुष्पित एवं फलित रहे।

—वै० भूरावल गुमां

। १३३ ॥

। १३३ ॥

॥ १३३ ॥

। १३३ ॥

॥ १३३ ॥

। १३३ ॥

॥ १३३ ॥

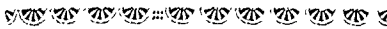
। १३३ ॥

॥ १३३ ॥

॥ १३३ ॥

॥ १३३ ॥

॥ १३३ ॥



## श्री वीरवल जी वैद्य

आयुर्वेदाचार्य, अध्यक्ष, श्री आर्य औषधालय, सेरडा ( बीकानेर )

सुभे पं० श्री गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री की स्वर्णजयन्ती पर बधाइयाँ भेजते हुए महान् हर्ष हो रहा है। यह महोत्सव राजस्थान में अपना एक निगला आदर्श रगता है। इसके संयोजकोंको कोटिश. धन्यवाद है जिन्हो ने एक महापुरुष का सम्मान करने में इस प्रकार के उत्सव का आयोजन किया।

पूज्य पं० जी प्रचीन भारतीय संस्कृति के मृतिमान् प्रतीक है। आप के जीवन का अधिकतर भाग लोकोपकारी कार्यों में ही अधिक व्यतीत हुआ है।

परमेश्वर से प्रार्थना है कि यह उत्सव को सानन्द सम्पन्न रर पूज्य पण्डित जी को शिरायु करे।

वैद्य वीरवल ग्रामां

1870  
1871  
1872  
1873  
1874  
1875  
1876  
1877  
1878  
1879  
1880  
1881  
1882  
1883  
1884  
1885  
1886  
1887  
1888  
1889  
1890  
1891  
1892  
1893  
1894  
1895  
1896  
1897  
1898  
1899  
1900

1870  
1871  
1872  
1873  
1874  
1875  
1876  
1877  
1878  
1879  
1880  
1881  
1882  
1883  
1884  
1885  
1886  
1887  
1888  
1889  
1890  
1891  
1892  
1893  
1894  
1895  
1896  
1897  
1898  
1899  
1900

1870

1871  
1872  
1873  
1874  
1875  
1876  
1877  
1878  
1879  
1880  
1881  
1882  
1883  
1884  
1885  
1886  
1887  
1888  
1889  
1890  
1891  
1892  
1893  
1894  
1895  
1896  
1897  
1898  
1899  
1900

1870

1871  
1872  
1873  
1874  
1875  
1876  
1877  
1878  
1879  
1880  
1881  
1882  
1883  
1884  
1885  
1886  
1887  
1888  
1889  
1890  
1891  
1892  
1893  
1894  
1895  
1896  
1897  
1898  
1899  
1900

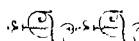
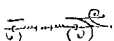
1870

1871  
1872  
1873  
1874  
1875  
1876  
1877  
1878  
1879  
1880  
1881  
1882  
1883  
1884  
1885  
1886  
1887  
1888  
1889  
1890  
1891  
1892  
1893  
1894  
1895  
1896  
1897  
1898  
1899  
1900

1870

1871  
1872  
1873  
1874  
1875  
1876  
1877  
1878  
1879  
1880  
1881  
1882  
1883  
1884  
1885  
1886  
1887  
1888  
1889  
1890  
1891  
1892  
1893  
1894  
1895  
1896  
1897  
1898  
1899  
1900

1870  
1871  
1872  
1873  
1874  
1875  
1876  
1877  
1878  
1879  
1880  
1881  
1882  
1883  
1884  
1885  
1886  
1887  
1888  
1889  
1890  
1891  
1892  
1893  
1894  
1895  
1896  
1897  
1898  
1899  
1900





श्रीमान् पं० रूपरामजी वैद्य आयुर्वेदाचार्य

अध्यक्ष

शाङ्कर आयुर्वेद फार्मसी ( चूरु )

एतादृशो बुधजनो मरुभूतलेशरिमं—

स्वामन्तरा वद गुरो ! ननु विद्यते कः !

यरद्धात्रपुञ्जहृदयस्त्रमहान्धकारं—

दूरेऽसितुं रविरिवाशु भवेत्समर्थः ॥१

त्वत्पादपङ्कजपराग शुभाञ्जनेन—

येनाक्षिणी क्लृपिते अपि पाविते स्वे ।

शास्त्रार्थयोधविषये नितरां कुर्यात्तः

किं जायतां न स गुरोप्यविलम्बितेन ॥२

शुभाभिनन्दनं गुरो ! त्वदीयमेतदद्भुतं

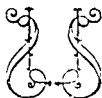
समुल्लसन्मनःसु ह्यात्रसंहतेर्विशेषतः ।

लसद्गवीक्षविज्ञहर्षतर्पमाणु पूरयत्रम्

शिवाकृत्वापटाक्षवीक्षितैर्जेत्कृतार्थताम् ॥३

आभवा—

रूपराम वैद्यः



॥ सत्यं शिवं सुन्दरम् ॥

के अग्रिम का सुभवसर प्राप्त हो ।

सेवायु वीषायु करं : ताकि उनकी होकर जयन्ती मनाकर अत्यधि  
परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वे पं० जी को नागि

श्रेय पं० जी को ही है ।

सन्मेलन के एक अधिदेशन के तारानगर में आयोजन एवं सम्प  
था । पं० जी उच्च श्रेणी के साहित्य-सेवी हैं । श्रीकान्तिर राज्य  
दुष्का है : जब कि मैं तारानगर राजकीय विद्यालय में प्रधान  
मुझे भी कुछ समय के लिए उनके कार्य फलपर देरने का अवसर  
पठितवती तारानगर की पर्यटन सी जनता के मुँह एवं शरीर  
पस्यतः एवं एवं गौरव का अग्रिम न करे । यह संस्था स्वामिनि  
के इतने उच्च पर्यटन की शक्ति पर ही शक्ति है । आर्य  
मानता जाना, एक पं० जी एवं गौरव का विषय है । आर्य  
स्थान स्थित विद्यालय तारानगर के कार्यपालक का एक जयन्ती म  
गान्य श्री पं० गण्डन प्रसाद जी शर्मा, प्रधानाचार्यक भी

श्री विद्यालय तारानगर

२०२४

श्रीमान् पं० हनुमान प्रसादजी शर्मा जी०

# श्रीयुत जैठमल जी शर्मा

अध्यापक

स्टेट स्कूल तारानगर

हमारी प्राचीन शिक्षापद्धति गौरवमयी संस्कृति और परिशोधित आधुनिकता के प्रतीक परम पूज्य पं० जी के सफलता पूर्वक अर्द्ध शताब्दी तक अविरल शिक्षण कार्य करते रहने पर हम तारानगर वासियों को पूर्ण गर्व है।

पं० जी ने अपनी शान्त प्रकृति एवं अध्यापन कुशलता का विनियोग इस नगर की संस्कृत पाठशाला के लिए किया, यह उनका सुन्दर धाभूषण और हमारा अहोभाग्य है।

मैं पं० जी को यह 'अभिनन्दन ग्रन्थ' भेंट करना उनके भ्रम के अनुष्ूल तो नहीं समझता ; पर भ्रटावरा यत्किञ्चित् किया है वह हमारे अपने लिए आत्मतुष्टि का एक साधन अवश्य है।

मैं ईश्वर से पं० जी के दीर्घ जीवन के लिए प्रार्थना करता हुआ यह अदाञ्जलि सादर समर्पित करता हूँ।

दिश्वर—

जैठमल गुना





# श्रीयुत माल चन्द्र वर्मा "विशारद"

अध्यापक

स्टेट मिडिल स्कूल 'तारानगर'

आज प्राधेना हैं ईश्वर से  
स्वर्ण जयन्ती मने तुम्हारी  
शहनाई के स्वर में !

सेवा व्रत के महा पुजारी  
जय होवे गुरुदेव ! तुम्हारी  
पृथ्वी पर घर-घर में !

प्राणिमात्र सुखयुत हो जगमें  
गूँजेगी नभ और धरा में  
देव प्रतिता तेरी !

आज सभी धर्म सफल हुआ है  
मिट्टी निशायें घोर अंधेरी ।  
बनी सफलता चेरी ।

ऐसा आरतीवाँद हमें दो  
देश धर्म की रक्षा के हित  
प्राण समर्पण कर दें ।

छात्र आपके जब चाहें तब  
मुदों में भी जान डाल कर  
नई चेतना भर दें !

—मालचन्द्र वर्मा



1 23 2112 113

2122

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 23 24 25 26 27 28 29 30 31 32 33 34 35 36 37 38 39 40 41 42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54 55 56 57 58 59 60 61 62 63 64 65 66 67 68 69 70 71 72 73 74 75 76 77 78 79 80 81 82 83 84 85 86 87 88 89 90 91 92 93 94 95 96 97 98 99 100

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 23 24 25 26 27 28 29 30 31 32 33 34 35 36 37 38 39 40 41 42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54 55 56 57 58 59 60 61 62 63 64 65 66 67 68 69 70 71 72 73 74 75 76 77 78 79 80 81 82 83 84 85 86 87 88 89 90 91 92 93 94 95 96 97 98 99 100

( 2122 ) 2122 2122 2122

2122 2122

2122 2122 2122

॥ श्रीः ॥

## श्री पं० मुरलीधर जी सारस्वत

वी० ए० साहित्य रत्न, अध्यक्ष  
हिन्दी विद्यापीठ चूरु।

परम ध्रुवेय पं० श्री गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री के दर्शन का सौभाग्य श्रीकानेर राज्य साहित्य सम्मेलन के षष्ठाधिवेशन में मिला। आपकी गम्भीर मुद्रा एवं कार्यसंलग्नता ही आपकी महत्ता की परिचायक थी। पूज्य पं० जी ने बड़ी संलग्नता के साथ देश की सेवा की है, उनका इस क्षेत्र में जितना सम्मान किया जावे वह थोड़ा है !

परम आदरणीय शास्त्री जी ने अध्यापन में अपने जीवन का अमूल्य अवसर प्रदान किया है, सैकड़ों बालरत्नों को आपने सखाई और विवेक की कसौटी पर कस कर खरा उतारा है।

पूज्य पं० जी की पावन-स्मृति से ही हृदय आनन्द विभोर हो उठता है।

श्री स्वर्णजयन्ती महोत्सव की सफलता में हृदय से चाहता हूँ। पतित पावन भगवान् कृष्ण हमारे कर्मठ, नेता को सहस्रायु प्रदान करें।

मुरलीधर मारम्भत



# गुलाम देवी का शिक्षक

पढ़ि होती रहे ।

करोती है कि वह इनकी शिक्षा करे, जिससे संस्कृत साहित्य की भाँति-  
ऐसे महापुरुष के लिये मैं श्री जगन्निधान परमेश्वर से प्रार्थना  
नहीं ।

वाराणसी की कौन-सी ऐसी संस्था है जिसके आप प्रधान शिक्षिका  
हैं । आपका साथ परिवार विद्वान है ।

दयालुता, कर्मठता एवं स्नेहप्रवणता का यथा-कथा परिचय मिलता रहता  
परमानन्द से विशेष स्नेह है, जिससे आपकी विद्वत्ता, सृजनता,  
आपसे मेरी सीखा सम्पर्क न होने पर भी, आपके कनिष्ठ पुत्र भाई  
देकर इसका नामकरण किया—ऐसा सुनने में आता है ।

प्रम का ज्वलन्त वर्तमान है । सबसे पहले आपने ही अपनी पुत्रके  
यही नहीं यहाँ का सांख्यिक पुस्तकालय भी आपके शिक्षाप्रसार-  
भी सम्मान किया जाय, शोभा है ।

शिव्य में यह संस्था और भी पढ़ि की प्राप्ति होगी, अब: आपका जिवना  
एवं गौरवमय करने में समर्थ हो रही है । आशा है आपके सहयोग से  
जिसमें हजारों बालिकायें अध्ययन कर अपने शिव्य की ज्वलन्त  
लगाया हुआ है जो आज युवक का रूप धारण करती जा रही है ।

मैं जिस संस्था में कार्य करती हूँ, वह धीरे-धीरे महापुरुष का  
अपवित्र गति है ।

आप संस्कृत-साहित्य के प्रकाश विद्वान हैं । पत्रालय में आपकी  
सहायता है ।

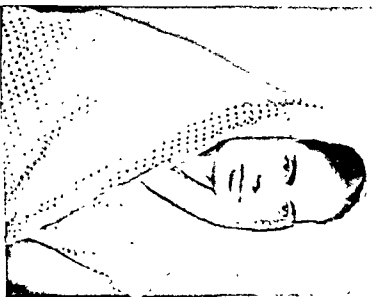
आयोजन कर भारतीय संस्कृति के प्रतीक का जो अर्थन किया है वह  
परम प्रशंसनीय है । विद्यालय के छात्रों में इस गौरवपूर्ण कार्य का  
श्रेयधं गोवर्द्धन प्रसाद जी दासजी की स्थापनायनी जानकर मुझे

शालिका पाठशाला वाराणसी

शान्तिनिका

शान्ति गुलाम देवी का शिक्षक





श्रीमती रवणात्मता देवी

त्रिसप्तत महाराणी मुद्रांग कालिंज ( बीकानेर )



श्रीमती साखरी देवी देवी

सकायिका यन्त्रालय मन्त्रालय ( बंगलूर )

# श्रीमती गुलाब देवी का प्रोक्त

प्रधानाचार्यिका

पालिका पाठशाला वाराणसी

अद्वैत-धर्म-गोपनीय-प्रसङ्ग-की-शाली-की-स्वीकृत-जानकर-मुक्त-प्रसन्नता-है। विद्यालय-के-छात्रों-से-इस-गौरवपूर्ण-कार्य-का-प्रयोजन-कर-भारतीय-संस्कृति-के-प्रतीक-का-जी-अर्चन-किया-है-वह-राष्ट्रीय-है।

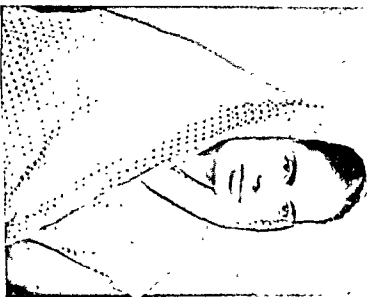
आप-संस्कृत-साहित्य-के-प्रकाण्ड-विद्वान्-हैं। पट्टशाला-में-आपकी-प्रतिष्ठित-गति-है।

में-जिस-संस्था-में-कार्य-करती-हैं, वह-पौधा-इसी-महापुरुष-का-गणना-है। जो-आज-वृक्ष-का-रूप-धारण-करती-जा-रही-है। इस-में-हजारों-शालिकायें-अव्ययन-कर-अपने-भविष्य-की-उज्ज्वल-वर्ण-गौरवमय-करने-में-समर्थ-ही-रही-है। आशा-है-आपके-सहयोग-से-विषय-में-यह-संस्था-और-भी-वृद्धि-की-प्राप्त-होगी, अतः-आपका-जितना-सम्मान-किया-जाय, उतना-है।

यही-नहीं-यहां-का-सांस्कृतिक-प्रसक्त-आप-आपके-शिक्षण-प्रसार-में-का-उत्कल्ल-उत्पादक-है। सधसे-पढ़ते-आपने-ही-अपनी-पुस्तक-कर-इसका-नामकरण-किया-है-एसा-सुनने-में-आता-है। आपसे-भेदा-सीमा-सम्बन्ध-न-होने-पर-भी, आपके-कनिष्ठ-पुत्र-आई-रमानन्द-से-विशेष-स्नेह-है, जिससे-आपकी-विद्वत्ता, सुजनता, यत्नता, कर्मठता-एवं-स्निह-प्रवणता-का-यथा-कथा-परिचय-मिलता-रहेगा-आपका-साथ-परिवार-विद्वान्-है।

वाराणसी-की-कौन-सी-ऐसी-संस्था-है-जिसके-आप-प्रधान-द्विषी-हैं। ऐसे-महापुरुष-के-विषय-में-जी-अभिप्रेक्षा-पर-भेद-से-प्रधान-रही-है-कि-यह-इसकी-विशेष-कर, जिससे-संस्कृत-साहित्य-की-अभि-प्रति-होती-रहे।

गुलाब देवी का प्रोक्त



श्रीमती खण्डसा देवी  
प्रामुख महारानी मुद्रांग कालिम ( श्रीकानेर )



श्रीमती माहनी देवी वीणा  
श्रीमती धनवर्मा अंगार मठ ( कानेर )

ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ



ੴ

ਨਾਮ

ਕਿੰ

ੴ

ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ





## श्री दीपचन्द्र शर्मा

संस्कृताध्यापक

प्रामोस्थान विद्यापीठ संगरिया ( बीकानेर )

“अरे महाराज, कुछ याद किया कर, सुख पायेगा” वयोवृद्ध गुरुदेव के छात्रावस्था में कटु लगनेवाले तथा भविष्य में शिव-चरदान रूप ये शब्द आज भी मेरे कानोंमें गूँजते हैं ।

कितनी सुन्दर शिक्षा है ! कितनी सरसता टपकती है !! कहते ही घनता है । पूज्य गुरुजी की प्रकाण्ड विद्वत्ता, भाषाशैली एवं आकर्षण शक्ति आदि विशेषताएँ वर्णनीय हैं ।

मैं प्रायः लोगों से कहा करता हूँ कि “हमारे गुरुजी इतने पृष्ठ होने पर भी कभी घरमा नहीं लगाते” उन्हें आजकल के नवयुवकों से अधिक दिखाई पड़ता है, यह शब्द मैं कितने गर्वके साथ कहता हूँ, यह मेरा हृदय ही जानता है ।

मैं गुरु सनातन ऋषि से यही प्रार्थना करता हूँ कि पूज्य गुरुदेव इसी तरह हमें शिक्षा देते रहें ।

आपका परम सेवक:—

दीप चन्द्र शर्मा





## श्री महावीर प्रसाद शारदा

पूज्य गुरुदेव ।

गुरु का स्थान कितना ऊँचा है, यह मुझ-जैसा प्राणी क्या समझ सकता है, फिर भी यह जानता हूँ कि गुरु-ऋण एक महान् ऋण है। दिन-रात सेवा करने पर भी क्या शिष्य इस महान् ऋण से छूट सकता है ? इस में सन्देह ही है।

महर्षि कल्प !

आप हमारे कुलगुरु हैं। आप ही के आशीर्वाद से हमारा कुल फूल-फल रहा है। मैं किस रूप से आप का अभिनन्दन करूँ ? जो कुछ इस जीवन में मिला वह आप ही की कृपा से। उन्हीं हृदय-भावों को श्रौचरणों में भेंट कर ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह पूज्य गुरुदेव को चिरजीवी करे।

आप का शिष्य—  
महावीर प्रसाद शारदा







## श्री गोपाल कृष्ण घांगड़ 'कानपुर'

आज उस महापुरुष के लिए शुभकामना भेजते हुए परम हर्ष हो रहा है कि जिसने अपने जीवन के ५० वर्ष सार्वजनिक कार्यों में व्यतीत किए हैं। मैं पूज्यपाद पण्डितराज श्रद्धेय गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री को अच्छी तरह से जानता हूँ। इन-सा सन्तोषी, सशरित्र एवं कर्तव्यपरायण, अद्भुत प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान् देखने में नहीं आया। आप मेरे मातृकुल के श्रद्धेय कुल-गुरु हैं। आप से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध है।

आप के दो सुपुत्र हैं, दोनों ही विद्वान्, देशभक्त एवं कर्मवीर हैं। बड़े श्री उमाशङ्कर जो आयुर्वेदाचार्य हैं, जो सिद्धहस्त चिकित्सक हैं। आप आजकल सेवा समिति वातव्य औषधालय के अध्यक्ष हैं तथा सरदार शहर कांग्रेस कमेटी के प्रधान कार्यकर्ता हैं, और एक लाख जनता की ओर से राजपूताना प्रा० फा० के प्रमुख रोजनल कौंसिल के सदस्य भी हैं। छोटे, साहित्यालंकार पं० परमानन्द शास्त्री निर्भय, विशारद हैं, आप अपने पिता जी की तरह प्रतिभा-सम्पन्न हंसमुख एवं मिलनसार व्यक्ति हैं, इसके अतिरिक्त कहानी-लेखक एवं कवि भी हैं। आप से मेरा बहुत ही स्नेह है।

अन्त में ईश्वर से करबद्ध प्रार्थना है कि पूज्य चाण की यह स्वर्ग-जयन्ती सानन्द सम्पन्न हो तथा पण्डित जी चिरजीवन प्राण हर हमारा पथ-प्रदर्शन करते रहें।

गोपालकृष्ण घांगड़

# श्रीमान् पं. त्रिभुवनराज

विरचित

इस पुस्तक के अन्त में विरचित एक कविता है।

श्रीमान् पं. त्रिभुवनराज विरचित

का जो सुयोग दिया है, उसके लिए संभव समाज ही नहीं, प्रत्यक्ष पवित्र पश्चिमी में अन्तर्गत कर कर रहे किताबें में अन्तर्गत है। संभव विद्यालय की स्थापना कर अन्तर्गत विद्यालय समाज की स्थापना। श्रीमान् पं. त्रिभुवनराज विरचित। आपने श्रीमान् पं. त्रिभुवनराज विरचित। आप जैसे कर्मठ विद्वान्, एवं विद्वान् विद्वेषी गुरुः प्रत्यक्ष गुरुः की स्थापना की जानकर अन्तर्गत में अन्तर्गत

(नोट)

श्रीमान् पं. त्रिभुवनराज

विरचित  
श्रीमान् पं. त्रिभुवनराज

तारानगर के उत्साही कार्यकर्ता, तहसील  
कांग्रेस-कमेटी के सेक्रेटरी प्रतिभासम्पन्न  
'नव युवक'

## श्रीयुत आशाराम दूदानी

आदरणीय गुरुदेव,

आपके स्वर्णजयन्ती महोत्सव मनाने का आयोजन बड़े उत्साह एवं  
हर्ष से किया जा रहा है। बड़े-बड़े विद्वान् उस कार्य में भाग लेकर  
अपना अहो भाग्य समझते हैं। मैं भी अपने हृदय के भावों को  
अपनी भाषा में व्यक्त कर सकूंगा इसमें सन्देह है।  
तपोधन !

मैं यह बिना द्विचकिचाहट के कह सकता हूँ कि आपके जीवन का  
प्रत्येक कार्य शिक्षाप्रद एवं अनुकरणीय है। आपने ब्राह्मण जाति को  
ही नहीं अपितु प्रत्येक जाति को उज्ज्वल शिक्षा एवं सदुपदेश देकर  
फतव्यशील बनाने की चेष्टा की है, वह किसी से छिपी नहीं है।  
ब्राह्मण जाति के मनुनिर्दिष्ट कर्मों को अपने जीवन में उतारने का जो  
प्रयत्न आपने किया है वह स्तुत्य है। ऐसी ही कर्तव्य निष्ठ विद्वान् के  
घरनों में मस्तक टेक कर अन्तर्दाह-शामन किया जाता है। आपके  
उस अभिनन्दन पर मेरी हार्दिक शुभ कामना यही है कि आपकी हीरक  
जयन्ती मनाने का सुअवसर भी हमें प्राप्त हो।

सेवक

आशाराम दूदानी

विद्यमान अज्ञान से विभक्त है कि वह जगत्, सकल कर

काल की सृष्टि आदि ही हृदय में आनन्द ही आता है ।

और कला के लिए है । आप के उपदेश और विद्यालय

प्राणी के हृदय में आप के लिए वही भाव है जो भावान् राम

ही कर-कमलों से हुआ है । एक से लेकर राजा तक प्रत्येक

मानव है रहे हैं, जन-सर्व का वीरारिषण, पुत्र्य मुक्ति के

विचारे में संस्था, कृषी महीनर अपना, छाया से छाया, की

कलाओं में सदा, विद्या, विद्यास करते हैं । आज आनन्द

का, कल्प, किये हैं, यह तो है ही जानते हैं, जो आप के

संस्था योग है । आप ने अपने जीवन में कितने लोक-

मानों का आशीर्जन किया आ रहा है, आप इस संसार के

मुक्त अज्ञान प्रसन्नता है कि हृदय मुक्ति की सजावणती

शु. नीर (शु. नीर)

०. गङ्गाजल की शोभा

## श्रीमान् गङ्गाजल जी सुखानी

अद्वेय गुरुदेव पण्डित श्री गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री की स्वर्ण-  
जयन्ती जान कर अत्यानन्द हुआ। भारतीय संस्कृति के  
अनुसार आप उस सम्मान के संबंधा योग्य हैं। आपने  
बड़े परिश्रम से श्री राजस्थान संस्कृत विद्यालय का  
सुदीर्घ ५० वर्ष तक सञ्चालन किया है  
सुरभारती, प्राचीन संस्कृत एवं देश  
की सेवा का पवित्र भाव आपके  
हृदय में फूट-फूट कर

भरा हुआ है। आपके उपदेशामृत का पान कर अनेक स्त्री-पुरुषों ने  
अपनी ज्ञान, पिपासा शान्त की है। मङ्गलमय  
हरि से प्रार्थना है, कि वह आपको चिरायु कर  
हम लोगों को आपकी हीरक-जयन्ती  
दिखाये।

—गङ्गाजल सुखानी



# श्रीगोपाल गोशाला

प्रधान मन्त्री

वाराणस

आचार्यवर,

आपकी स्वर्ण जयन्ती जान कर गोशाला को जितनी खुशी हुई है वह अकथनीय है, क्योंकि सर्व प्रथम श्री बालकनाथ जी की प्रेरणा से आपने तीन मास तक लगातार "गो पालन" और "गो सेवा के लाभ" पर व्याख्यान देकर स्थानीय जनता को आकर्षित करके इस पवित्र आश्रम की स्थापना की। श्री तोलाराम जी सेठको भी आपने जमीन देने के लिए तैयार किया। वह जैनी था तो भी उसने गोशाला के लिए भूमि दे दी। आज उसी जगह गोशाला का मकान है। विद्यालय में ही सर्व प्रथम वह मीटिंग हुई जिसमें गोशाला का चन्दा लिखा गया। समय समय पर आपने गोशालाके उत्तरदायित्वपूर्ण सभापति, सहकारी सभापति आदि पदपर रहकर इसकी बहुत-बहुत सेवा की है। आप हमारे नगर के माने हुए यशस्वी विद्वान् हैं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आप चिरजीवी हों।

बिनीत

श्री गोपाल गोशाला





## पं० रामचन्द्र शर्मा "विशारद"

मन्त्री

मनोरञ्जन क्लब तारानगर

पूज्यपाद धयोवृद्ध गुरुदेव के चरण कमलोंमें पुष्परूपी दो शब्द भेंट करना अपना मुख्य कर्तव्य समझता हूँ। आपके इस विशाल एवं अभूत पूर्व अभिनन्दन समारोह को देखकर वह मनोरञ्जन क्लब अपूर्व आनन्द का आस्वादन कर रहा है।

धीराजस्थान संस्कृत विद्यालय, श्री सार्वजनिक पुस्तकालय जैसी उपयोगी संस्थाएँ आपके ही सतत-प्रयास एवं शिक्षा-प्रेमका सुन्दर फल हैं। आप में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आप जिस कार्य को हाथ में लेते हैं; उसे पूर्ण करके ही छोड़ते हैं, श्री चीकानेर राज्य-साहित्य सम्मेलन का पट्टाधिवेशन का इस नगर में सम्पन्न होना इसका ज्वलन्त उदाहरण है। इस नगर की समस्त सावजनिक संस्थाओं का बीजारोपण आपके ही कर कमलों से हुआ है। इस मनोरञ्जन क्लब को भी आपका प्रोत्साहन समय-समय पर मिलता रहता है। उस धनादि शक्ति से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि वह हमारे पथ प्रदर्शक को चिरायु करे।

भवशीय

रामचन्द्र शर्मा

करती हुई अपने को कल-कल समक रही है ।

यह संस्था आपकी सदा जयन्ती पर दार्ष्टिक शिष्य कामना प्रकट

करसे सम्मान कर रहे हैं ।

से अवगत इस संस्थाके अध्यक्ष एवं पर आसीन रहते हुए इसका सुवर्ण

आर्थिक स्थिति सभी प्रकार से सतीष जनक हो गई है । आप प्रारम्भ

मिल जाता है कि अल्पसमय में ही 'शांतिपत्र पत्रिका' को

स्थापना हुई थी । आपके अनवरत परिश्रम का परिचय केवल इसी से

सबत प्रयास के फलस्वरूप इस 'श्री शांतिपत्र पत्रिका' को

में भी प्रसिद्धीय निर्देशन किया है । सामाजिक विद्या में आप ही के

विद्या में ही एक नव प्रेरणा गयी थी, प्रत्येक धार्मिक एवं सामाजिक विद्या

'श्री राजस्थान संस्कृत विद्यालय की जन्म देकर अपने कृत्य विद्या की

स्वाभाव किया जाय । इस नगर की वास्तविक अध्यक्षताय विद्यार्थि

स्थान में रहते हुए यह आपस्यक प्रतीत होता था कि वनका विस्तृत

मनाई जा रही है । पूजास्यद पठितवती की साहित्य एवं जन सेवा की

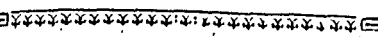
व्यापक विस्तार श्रीमान् १० गीर्वाण प्रसाद श्री शोभा की सदा जयन्ती

यह मुनकर दार्ष्टिक प्रसन्नता हुई कि वास्तविक के सम्मानार्थ

श्री शांतिपत्र पत्रिका वास्तविक

पृ: १

शुभित प्रकारदत्त शोभा "विद्यार्थि" विद्याभूषण

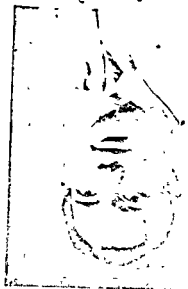




ਮੁਖੀ ਦੇ ਪੁਸ਼ਟੀ ਦੇ



ਮੁਖੀ ਦੇ ਪੁਸ਼ਟੀ ਦੇ

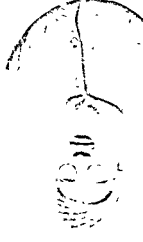


ਮੁਖੀ ਦੇ ਪੁਸ਼ਟੀ ਦੇ

ਮੁਖੀ ਦੇ ਪੁਸ਼ਟੀ ਦੇ  
ਮੁਖੀ ਦੇ ਪੁਸ਼ਟੀ ਦੇ



ਮੁਖੀ ਦੇ ਪੁਸ਼ਟੀ ਦੇ  
ਮੁਖੀ ਦੇ ਪੁਸ਼ਟੀ ਦੇ



# पण्डित प्रवर डाक्टर हजारीप्रसाद जो द्विवेदी

साहित्याचार्य

अ-यश—हिन्दी-विभाग, शान्तिनिकेतन, बोलपुर

हमारे देश की सदस्यों वर्ष व्यापी साधना का मुफ्त संस्कृत भाषा में संचित है। हमारी उपेक्षा के कारण इस भाषा के लिये अनेक प्रन्थरत्न नष्ट हो गये हैं। पिछली दो शताब्दों की पराधीनता ने हमारी स्वाधीन चिन्ता को बड़ा धक्का पहुँचाया है। हम अपनी स्वस्थ परम्परा से विद्विष्ट हो गये हैं। संस्कृत के साथ हमने संस्कृत के विद्वानों को भी उपेक्षा की है। ऐसे ही दुर्दिन में जिन लोगों ने ज्ञान के प्रदीप को जलते रखा है और अपने प्राणों की पाती लगा कर बसकी रक्षा की है, वे संबंधी अभिनन्दनीय हैं। मगध के अंधा के भीतर से भी उन्होंने अपने प्रिय विषय की सेवा मन-मन-धन समभक्त की है। ऐसे विद्वानों का मूल्य भारतवर्ष आज नहीं तो निकट भविष्य में अवश्य समझेगा। इन्हीं लोगों के तर से भारतवर्ष का सर्वोत्तम साहित्य नष्ट होने से बचा है। ऐसे विद्वानों में श्री राजस्थान संस्कृत पाठशाळा, तारानगर के अध्यापक एवं संस्थापक पं० गोबर्धन प्रसादजी शास्त्री अन्यतम हैं। आज उनके निधन ने और शिष्यों ने उनका अभिनन्दन करने का निश्चय करके वेदों का श्रेष्ठ सम्मान किया है। इस अवसर पर मैं भी संतुष्टि की दो बहुरंगक प्रणाम करता हूँ।



## श्रीमान् सेठ कालूरामजी शारदा

राजस्थान प्रान्त में जब अज्ञानान्धकार को घनघोर घटाएँ छाई हुई थी, उस समय पूज्य गुरुजी ने इस विशाल संस्था की नींव डाली थी। उस समय संवत् १९५६ में इधर-उधर तीस-तीस कोस तक कोई ऐसी शिक्षा संस्था नहीं थी। उस समय आप बनारस से अध्ययन कर के ही लौटे थे। स्थानीय शिक्षा-प्रेमियों की प्रेरणा से अन्यान्य स्थानों से बुलाहट होने पर भी मातृभूमि से स्नेह होने के नाते आपने यही रहकर कार्य किया। आपके ही परिश्रम का फल है कि आज यह संस्था इतनी उन्नति पर है।

आप हमारे गुरु हैं, प्रत्येक शास्त्र में पूर्ण प्रवेश रखते हैं। कर्मकाण्ड के तो आप सूर्य ही हैं। तारानगर की सभी संस्थाओं के आप सच्चे हितैषी हैं। अभी आपने एक प्राज्ञण पञ्चायत सभा स्थापित की है, जिसमें दरी, पलंग, वर्तन, आदि लोप्येकारो वस्तु पद्य की गई है। सभा के भवन के लिए आपने ३७०० दर गज भूमि दी है। आप दयार्द्र हृदय एवं पूर्ण सन्तोषी हैं।

आपके दो पुत्र हैं, दोनों ही कर्मठ एवं विद्वान् हैं।

हरिवर से प्रार्थना है कि ऐसे शिवरूप गुरुदेव को चिर काल तक जीवित रखें जिससे संस्कृत साहित्य को अभिवृद्धि होती रहे।

— कालुगम शारदा





## श्रीमान् सेठ कालूरामजी शारदा

राजस्थान प्रान्त में जब अज्ञानान्धकार को घनघोर घटाएँ छाई हुई थीं, उस समय पूज्य गुरुजी ने इस विशाल संस्था की नींव डाली थी। उस समय संवत् १९५३ में इधर-उधर तीस-तीस कोस तक कोई ऐसी शिक्षा संस्था नहीं थी। उस समय आप बनारस से अध्ययन कर के ही लौटे थे। स्थानीय शिक्षा-प्रेमियों की प्रेरणा से अन्यान्य स्थानों से जुलाहट होने पर भी मालूमि से स्नेह होने के नाते आपने यही रहकर कार्य किया। आपके ही परिश्रम का फल है कि आज यह संस्था इतनी उम्रवि पर है।

आप हमारे गुरु हैं, प्रत्येक शास्त्र में पूर्ण प्रवेश रखते हैं। कर्मकाण्ड के तो आप सूर्य ही हैं। वाराणस की सभी संस्थाओं के आप सच्चे दिगम्बर हैं। अभी आपने एक प्राज्ञान पञ्चायत सभा स्थापित की है, जिसमें शूरी, पलंग, घर्तन, आदि लोकोपकारी वस्तु पत्र की गई हैं। सभा के भवन के लिए आपने ३७०० दर गज भूमि दी है। आप दयार्थ हृदय एवं पूर्ण सन्तोषी हैं।

आपके दो पुत्र हैं, दोनों ही कर्मठ एवं विद्वान् हैं।

देवर से प्रार्थना है कि ऐसे शिवरूप गुरुदेव को चिर काल तक आश्रित रखें जिससे संस्कृत साहित्य की अभिवृद्धि होती रहे।

श्रीगणेशाय नमः

— श्रीगणेश —

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥  
श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥  
श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥  
श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥  
श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥  
श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

( श्रीगणेश ) श्रीगणेश

“श्रीगणेशाय नमः” श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

# कविवर जयनारायण शर्मा

वेतिया ( चम्पारन )

भाज प्रातराश के पहले ही  
प्रिय छात्रवृन्द का प्रेषित  
एक लिफाफा  
मिला !

चढ़ा चश्मा आँखों पर  
मैंने

जल्दी से खोला ।

वर्तुलाकार मुनहरे अङ्कों में  
लाळ स्याही से ढपा हुआ ।

गुरुभार जयन्ती का लेकर  
था देवदूत सा बना हुआ !

\* \* \* \*

आइं मुन्ने की माँ सहसा  
दूर खड़ी पढ़ शीर्षक  
बोली

किसकी नाथ ! जयन्ती है ?

गुरुकुल वाले गुरुदेव की

रेनों वाले महादेव की  
हाँ ! हाँ !!

जिसने कर्मयोगी बन  
मुक्त हस्त हो

अर्ध शताब्द तक

खूब लुटाया

निज प्यारा धन

अमर भारती विद्या ।

\* \* \* \*

आओ प्रेयसि !

शुद्ध हृदय हो

देवाधिदेवसे

करें प्रार्थना

चिर जीवो

गुरुदेव हमारे

कीर्ति रहे

अनवधा

आपका शिष्य—

जयनारायण ।



श्रीमान् पं० कुरुक्षेत्र शर्मा कविरत्न आयुर्वेदभिक्षु  
गान्धी ( चीकानेर )

हे शीलपुञ्ज ! हे महापुरुष !  
हे धर्मवीर ! हे हे वरिष्ठ !  
हे विद्वानों में अप्रगण्य !  
हे छात्रगणों के गुरु वसिष्ठ ॥१॥

पूर्ण हुई है बहुत दिनों से  
आज हमारी मनः कामना,  
अन्तः स्थल में छलकरही थी  
वर्षों से जो गुप्त भावना ॥२॥

जगती तलमे बचा-बचा  
देव तुम्हारी करे आरती,  
अप्रतिहत हो सदन-सदन में  
रहे गूँजती देव भारती ॥३॥

वरप किरुर  
कुरुक्षेत्र ।

सपरिवार प्रसन्न रहे ॥

प्रमाण है कि वह स्वर्ण अथवा सहीस्वर्ण की सफल करे तथा आपकी  
आपकी सुखारती सेवा अनुकरणीय है, परम पिता परमात्मा से

पिडरल !

करते थे तब आपके दर्याओं के लिये बहुत ही उत्कण्ठा रखी करते थे ।  
गंगा सिद्ध जी एवं श्री शारदा सिद्ध जी बहादुर जब तारानगर पुरा  
थ राजाओं तक की अपनी और हठान आकेट कर लेते हैं महाराज  
लोकप्रकारी संस्थाएं विद्यमान हैं । आपके गुणों में इतनी शक्ति है कि  
आप के ही परिश्रम का फल है कि तारानगर में आज इतनी

कम योगिन ।

खलवली भव जाया करती थी ।

करते थे, उस समय आपके सिद्धनाद की सुनकर नास्तिकों के हृदय में  
जब आप शालीय विषयों को लेकर धारा प्रवाह रूप से भाषण दिया  
हृदय की स्थिति आते ही हृदय में आनन्द का पारस्वार उमड़ पड़ता है ।  
जब आप आसन पर बैठ कर हमें शाली शिक्षा दिया करते थे तब

परिवार ।

ही ही शब्द लिखने का साहस कर सकता है ।

शक्ति के भी बाहर की बात है, मैं तो आपके चरणों का ध्यान रख कर  
आपके गुण वर्णन का काम तो मुझ जैसे अज्ञेय व्यक्ति की कल्पना

पुन्यवर शुकदेव ।

श्री शक्तिदेव शर्मा अक्षयप्रकाश

तारानगर के प्रसिद्ध कवि एवं कुशल कहानी लेखक,  
साहित्यालङ्कार एवं भविष्यद्वक्ता

## श्रोयुत कविवर—“निर्भय”

मुकुलित हृदय सरोज आज विकसित होता है  
प्रमद पुलक तारों में उठता है मृदु स्पन्दन !।  
तम आकुल मस्तिष्कदरी भी धामीकर रुचि—  
नव आलोक विभासित हो करती अभिनन्दन ॥१

आज हुई स्वच्छन्द लेखनी युग-युग बढ़ा  
जागरूक हो उठी प्रसुप्ता कवि-कविताएँ ।  
शतराताब्द पद पतित शृङ्खला छिन्न हुई है  
हृद्-जलनिधि में हुई प्रवाहित रस-सरिताएँ ॥२

जिसकी सिन्धु गम्भोर गर्जना फो सुन कर के  
किल्बिषका कम्पित हो जाता है अन्तस्तल !।  
धर्म-धारि-धौरेय-मुशोभित वसुन्धरा भी  
मुदितमना होती चुम्बित कर जिसका पदतल ! ॥३

जिस कर्मठ के चरण युगल में धुँक जाती है  
भद्रा से, उत्तुङ्ग धरणि शासन मूर्धाबलि !।  
उसी महा महनीय धीर के चरणों में यह,  
अर्पित है नव एक अकिञ्चन की भद्राञ्जलि ॥४

विधेय—  
“निर्भय”





# कुसुमाञ्जलि

व्यहर्ता :—

श्रीयुत लक्ष्मीनारायण शर्मा बी० कॉम०

कलकत्ता

राम जन्म के पुण्य पर्व में  
मह-वसुधा के बीच धर्म में ।  
ओढ़ कसूमल मंजु शाटिका  
विद्वानों के बीच शर्म से  
देव ! जयन्ती तुम्हें बरेगी ॥१

यह शुभ्रवर्ण औ सितवसना  
जो सत्प्रताप की है जननी ।  
हो वक्षभार से उत्प्लवित  
सौन्दर्य भार से लदी हुई  
कीर्ति तुम्हारे चरण पड़ेगी ॥२

हे देव ! भूलकर भी जिसको  
धा नहीं कहाचित् स्थान दिया ।  
यह कमलकोमला आकर्षित हो  
महापद्मला स्वर्लक्ष्मी भी  
चरचस तेरे चरण चड़ेगी ॥३



## मतीक्षा

नारद एकस्मिन् दिने भ्रमन् सुरालयमाच<sup>१</sup> ॥  
हरिणा भारत भावुकं पृष्टश्चेत्थमुवाच ॥१॥

भो मनोनिरोधशिक्षक ! क्षितौनरा  
वृद्धकामकोपलोभमोहमत्सराः ॥  
नो नियन्तुमीशते मनोऽतिचञ्चलं  
त्वां प्रतीक्षते ततो हरे ! धरातलम् ॥२॥

यैरकारि षाड्वैः<sup>२</sup> स्वधर्ममण्डनं  
वेद्युक्तिभिः पुरा विधर्मखण्डनम् ॥  
दरीयन्ति ते हि धर्मनाशि कौशलं  
त्वां प्रतीक्षते ततो हरे ! धरातलम् ॥३॥

बाहुजैः सुरेश ! हा<sup>३</sup> मुरा प्रपीयते  
न प्रजाभिरक्षणे प्रभोऽवधीयते ॥  
रम्यते विजातिजाभिरस्यते पलं  
त्वां प्रतीक्षते ततो हरे ! धरातलम् ॥४॥

नैगमा विभोऽप्यनल्पधैर्मधीधनाः  
कार्प्यपाशुपाल्यनेगमत्वजीवनाः ॥  
अक्षदेवितामवाप्य कुर्वते ब्रह्मं  
त्वां प्रतीक्षते ततो हरे ! धरातलम् ॥५॥

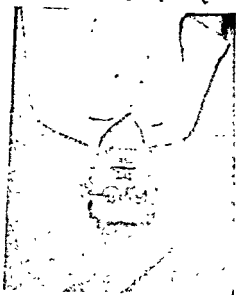
प्रक्रिया<sup>४</sup> विनाऽपि वेदवागधीतिनः  
प्राशुपीठसंस्थिता बतोपवीतिनः ॥  
पादजा यदाचरन्ति तद् गिराऽप्यलं  
त्वां प्रतीक्षते ततो हरे ! धरातलम् ॥६॥

नेति तेऽप्रजन्मबाहुजाऽर्यपादजा<sup>५</sup>  
भूतलोद्भूति विधातुमीशते प्रजाः ॥  
आभयस्त्वमेव "शमचन्द्र !"<sup>६</sup> देवलं  
त्वां प्रतीक्षते ततो हरे ! धरातलम् ॥७॥

१. भवु गनी वाचने च' इति भौवादिवाद् धातोर्भिटि प्रथमपुरुषैकवचने रूप  
मिदम् । २. षाड्वैः । ३. अधिकारम् "प्रकृत्यात्वमिहात् एवात्" इत्यर्थः ।  
प्रकृत्या विजातिज यदाचरन्तीत्यन्वयः । ४. इति-एवम् (उक्त प्रकारेण) अप्रजन्मबाहु-  
जास्यपादजासते तत्र प्रजाचन्द्राः वा भूतलोद्भूति विधातुं नैशते वैव स्वर्गः क्षन्ताज्जयं ।







ମୁଖ୍ୟ ମନ୍ତ୍ରୀଙ୍କ ଚିତ୍ର



ମହାରାଜାଙ୍କ ଚିତ୍ର



वीकानेर राज्य के प्रसिद्ध सेठ  
रायसाहब वृद्धिचन्दजी कर्वा

प्रधान संचालक :—

सालिगराम राय धुन्नीलाल बहादुर एण्ड कम्पनी,  
डिब्रूगढ़ ( आसाम )

श्री पं० गोवर्द्धन प्रसादजी शास्त्री महोपदेशक, के दर्शनों का शुभ अवसर मुझे कई दफा मिला है, मैं आपको विद्वता, सादगी एवं सघाई से अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ ।

आपने तारानगर ऐसे स्थान में ५० वर्ष तक श्रीराजस्थान संस्कृत विद्यालय का संस्थापन संचालन एवं अध्यापन कर पंडित समुदाय के समक्ष अद्वितीय उदाहरण उपस्थित किया है ।

आपके ज्येष्ठ पुत्र वीधराज उमाशंकराचार्य मेरे नितान्त परिचित धन्युओं में से हैं । यदाकदा उनके साथ वार्तालाप कर मैं महोपदेशक जी को और भी अधिक धृद्धा करने लग गया हूँ । परमात्मा महोपदेशकजी को सपरिवार सुख समृद्धि पूर्ण करें ।

भवदीय  
वृद्धिचंद कर्वा







रूढा अपि शब्दाः सन्ति, यौगिका अपि योगरूढा अपि सन्ति, यौगिकरूढा अपि यन्तु यौगिकता मात्रोपहृत्तने तैर्यास्क सिद्धान्तः संश्लेष्यते, तत्र तेषामेव भ्रान्तिः, सल्लु यास्कस्य तादृश आशयः ।

यास्कस्य सिद्धान्तः साधीयान अस्तियत् सर्वाणि सांस्कृतानि नामानि आख्यातः जातानि । किमपि नाम आख्यात रहितं न भवति । कामं तद् रूढं योगरूढं वा स्यात्—इति तदभिसन्धिः । परमदसीयं तात्पर्यमिदं नास्ति यद् वेदं यौगिका एव शब्दाः सन्ति ; नेतरे इति । अस्यतु इदं तात्पर्यं पदं न केवलं वेदं (यतो हि तेनात्र वेदनाम नोपात्तम्) प्रत्युत सर्वत्रैव, कामंलोकः स्याद् वेदो वा नामानि आख्यात जानिएव । अतएव लौकिकामरकोपादीनां सुभास्यव्याख्या दिपु रूढ-योगरूढादीनामपिशब्दानां प्रकृतिप्रत्ययप्रदर्शनमुखेन व्युत्पत्तयः कृत सन्ति ।

परं यस्मिन् नाम्नि तत्तदाख्याते विद्यमानेऽपि तत्तदाख्यातानुसारी अर्थो नोपलभ्यते, सरूढिशब्दः, अर्थात्तत्र रूढ्या अर्थो भवति । यथा आर्यसमाजिन स्वामिदयानन्देनापि 'नामिकस्य' द्वितीयपृष्ठे लिखितम्—“रूढि उक्तो कश्चिद् वेदं बिसर्गं प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ न पटता हो किन्तु वे संज्ञादि बोधक हो जैसे स्वर्षा शाला, माला इत्यादि” एतेन स्वामिनो वचनेन सिध्यति यद् रूढिशब्देऽपि शब्दान्तरवत् प्रकृति प्रत्यास्तु भवन्ति केवलं तस्मिन् प्रकृति प्रत्ययार्थो न संपठते—इति । एतेन अस्मत्स्यै सिद्धिः । ततो वेदे ईशशब्दानां दुरापता नास्ति ।

यथा वा—‘चित्रकर्मणि कुशालः’ अत्र “सर्वाणि आख्यात जानि नामानि इति सिद्धान्तरवात् ‘कुशाहाति’ इति आख्यातानुसारमर्थः, सच मुख्यः, परसं प्रकृते अनुरूपप्रतया रूढ्या चतुरार्थं पर्यवस्यति । इयमेवास्य शब्दस्याख्यातवत्त्वेऽपि रूढिता नाम । अतएव ‘मोर्नासा दर्शनस्य’ ‘शाबरभाष्येति श्लोके—कुशाल प्रकीर्ण इति, बहुषु कुशाली छानुगुणेषु सन्तु निपुणतायामेव कुशाल शब्दो रोहाद् रूढिरुच्यते इति, बहुषु च बीणावादभ्य गुणेषु सन्तु निपुणे एव प्रकीर्णशब्दो वदमानो रूढ इत्युच्यते । तस्मात् सत्यपि लक्षणात्वे भृतिसामर्थ्याद् रोहति शब्दः ( १. ५. २२ ) एव अत्राचिदन्वयस्य नाम ‘कमल नयन’ इति, अत्र आख्यातवत्त्वसिद्धान्तद्वारात् ‘कमल नयन’ पदस्य व्युत्पत्तिदुष्कत्वेऽपि प्रकृत पुरषे तद्वर्षा प्रात्या सरब्द अन्वयान्-ओऽपि रूढि शब्दो गण्यते ।

( ३ ) वैशाखरूपानां विदितं स्यात्—यद्—‘वशाधये’ प्रवर्तनादि के ‘वशाधये’ इति शिबसूत्रे वल्गुशब्दा शब्दान् प्रत्यादिश्व वातिवल्गुशब्दा शब्दान्



य आदित्यार्थके शिरःशब्दे । तेन तन्मते लौके वेदे च यौगिकता योगरूढता वा अस्ति ; वेदे एव यौगिताया एकमात्रं नियमोनास्ति तन्मते । ततो नानेन वादिनः कापि इष्टसिद्धिः, प्रत्युत तदीयाऽनिष्टापत्तिरेव, यतो हि लोक रूढा अपि ते ते शब्दा वेदेऽपि लोकरूढार्थं वर्तन्ते । ततोऽस्मत् पक्षसिद्धिर्जातिव ।

( ४ ) वादिनां ध्रुवाणिनिरपि माननीयः । स औनादिकशब्दान् प्रकृति-प्रत्यय रहितान् अव्युत्पन्नान् मन्यते । अतएव तु “अतः कृकमि कंस” ( ८-३-४६ ) इति सूत्रे कर्मुं धातूपादानेनैव ‘कृ’ इत्यनेन ‘कारः’ इति प्रत्ययान्तस्यैव ‘कंस’ शब्द-स्यापि प्रहणसम्भवे स वैयाकरणानां प्रसिद्धशब्दभूतादौरवादापि अभीत्वा तं ‘कंस’ शब्दं प्रयुञ्जे; तत्र केवल मेतदेष कारणं यत् स संस्कृतसाहित्ये कतिचिद् औणादिक-शब्दान् ये वेदेऽपि मुलभाः—रूढान् मन्यते । एवं पाणिनिः कृत्तद्धितवर्जितानाम-व्युत्पन्नानामपि शब्दानाम्—अर्थवदधातु ( १ । २ । ४५ ) इति प्रातिपदिकत्वविधाय तेषामग्रे विभक्तिप्रयोगमनुशास्ति । तेन पाणिनिमतेऽपि षाडशरूढशब्दानां सत्ता सिद्धा । अतएव दयानन्दस्वामिना नामिकस्य’ द्वितीय पृष्ठे लिखितम् ‘पाणिनि आदि भौ रुद्धि मानते ई’ ।

यदि एवं पाणिनेश्च अष्टाध्यायी वादिभिर्वेदाङ्ग मन्यते तद्गव्याख्या च ‘वेदाङ्ग प्रकाशो’ मम्मन्यते, तर्हि वेदेऽपि पाणिनिनयेन रूढशब्दानां सत्ता सिद्धा । अतएव यास्कैन ‘न सर्वाणि आख्यातजानि नामानि’ इति पक्षकृते गार्ग्यं नाम निर्दिश्य ततो “वैयाकरणानां चैके” ( नि० १ । १२ । ३ ) इति स्वप्राग्भवप्य पाणि-नेरपि संकेतः कृतः ।

अतएव भाष्यकृदपि ‘आयनेयी ( ७।१२ ) इति सूत्रे ‘उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि’ इति ब्रूते । एवमेव ‘आदेश-प्रत्यययोः ( ८।३।५६ ) इति सूत्रेऽपि च स औणादिकशब्देषु प्रकृतिप्रत्ययभाग व्युत्पादनमस्ति नास्ति च, इति पक्षद्वयं प्रदर्श-यामास । तेन वेदेऽपि यो रूढयोगरूढता सिद्धा । किञ्च—यस्य ते अर्थगता धर्मास्तच्छब्द वाच्येऽपि प्राप्नुयुः अन्यत्रापि च अतिव्याप्नुयुः, तत्र एकस्मिन्नेव नियमने योगरूढता भवति । रुद्धिशब्दसिद्धावपि यथा स यास्कसिद्धान्तो न विहन्यते, तथा योगरूढित्व स्वोकारेऽपि उक्त सिद्धान्ते क्षतिनोपतति ; ‘पृष्ठपदं’ यौगिकत्वे क्रीटकमलादिषुवाचकमपि कमले नियमितम् । अनुपवास्य शब्दस्य आख्यातजत्वेऽपि योगरूढता जाता । एतदर्थं ध्रुवास्केनापि ‘परिप्राजको भूमिजः ( नि० १।१४।२ ) एवं ‘विन्वाद्’ लम्प्रचूडकः’ ( १।१४।७ ) एतदादयो योगरूढाः शब्दाः स्वयमुदाहृताः, यत्र तदीयमिदमभिसंहितं यत्-कृपाश्चित् सन्यासि प्रभृतोनां



‘महान्तो माध्यमिक देवगणाः, ) नि० अ२६।१ ) इत्थं ‘तस्मैपावक !’ ( ऋ० १।१२-६ ) अत्र यदि ‘पावक’ शब्दोऽग्नौ रुद्धं तर्हि ‘समुद्रार्थायाः शुचयः पावकाः, ता आपो देवीरिह मामवन्तु ( ऋ० अ४६।२ ) अत्र अन्वेवतात्वाद् यौगिकः । यदि ‘वह्नि’ शब्दो वेदे ‘वह्नि यशसं’ ( ऋ० १।६०।१ ) इत्यादि मन्त्रेषु अग्न्यर्थो रुद्धः, तर्हि ‘यदि मातरो जनयन्त वहिनम्’ ( ऋ० ३।३१।२ ) इत्यादिषु मन्त्रेषु पुत्रार्थे यौगिकः ।

‘पुरन्धर्योषा’ ( मनु० २।२।२२ ) इत्यादौ यदि ‘पोषा’ शब्दः स्यर्थे रुद्धः, तर्हि ‘शुद्धाः पूता योषितोः यक्षिया इमाभापः’ ( अ. १।१।१।७ ) इत्यादौ योषिच्छब्दोऽपाम ( जलानां ) अर्थे ‘यूप्यन्ते—सेव्यन्ते’ इति यौगिकः । यदि ‘देवान्—मनुष्यान् अमु-रान्’ ( अ. ८।६।२४ ) अत्र ‘अमुर’ शब्दो देवविरोधित्वार्थं रुद्धः, तर्हि ये च देवा रक्षा नृन् पाहि अमुर ! ‘त्वमस्मान्’ ( ऋ० १।१७।१ ) अत्र इन्द्रदेव कृते ‘पलवान्’ इति यौगिकरूपे प्रयुक्तः । एवं वेदे यौगिका रुद्धा, योगरुद्धा, यौगिकरुद्धाश्च शब्दाः सिद्धाः ।

ये वेदे यौगिकताद्दृष्टमात्रे विराजमाना अर्वाञ्च आर्य-समाजिनः ते स्वनेतुः स्वामोदयानन्दस्य वचनं शृण्वन्तु । तेन निज ‘नामिक’ पुस्तकस्य द्वितीय पृष्ठे प्रोक्तम्—‘यास्क मुनि आदि निरुक्त कार और व्याकरणों में सद्यः शाषटायन मुनि सद्यः शब्दों को धातु से निष्पन्न अर्थात् यौगिक और योगरुद्धि ही मानते हैं, और पाणिनि आदि रुद्धि भी मानते हैं, परन्तु सद्यः ऋषि मुनि वैदिक शब्दों को यौगिक और योगरुद्धि तथा लौकिक शब्दों को रुद्धि भी मानते हैं ।’

अमुनव स्वामिना ‘निषण्डु वैदिक कोषस्य भूमिकायां लिखितम्—‘यद् सद्यः पदं वेदे में यौगिक और योगरुद्धि आये हैं केवल रुद्धि नहीं’ इत्यन्तः सद्यः शब्दाः अत्र तेन वेदे योगरुद्धा अपिशब्दाः स्वीकृताः; यान् अद्यतना आर्यसमाजिनो न मन्यन्ते, यैश्च सनातनधर्मस्य पक्षस्य सम्यक् पुष्टिर्त्रयिते । वेदे केवलं रुद्धि शब्दान् वयमपि सनातनधर्माणो न मन्महे, परं रुद्धानि योगरुद्धानि, यौगिकानि यौगिकरुद्धानि । एतत्पुस्तकस्य भूमिकायां स्वामी दयानन्देन लिखितम्—‘यद् वेदे ‘पर्वत’ शब्दस्यार्थो ‘नेप’ इत्यस्ति यौगिकत्वे, परं पौराणिकस्तु ‘पहाड़’ इति शब्दार्थं गृह्णान्ति इति’ परममुनैव स्वामिना यत्र वेदे पर्वत शब्दस्य ‘नेप’ इत्यर्थं कृतः, तत्रैव ‘यजुः १।७।१, यजुः १।८।१३, इत्यादि स्थले ‘पर्वत’ शब्दस्य ‘पहाड़’ इति रुद्धः कर्तव्य इत्यप्येव कृतः । एवं तत्रैव तेन प्रोक्तम्—‘यद् वेदे ‘अहि’ शब्दस्य ‘नेप’ इत्यर्थः, परं पौराणिकः सर्पार्थं गृह्णान्ति; परं वदं क्रमो यद् वेदे उभादेव अर्थे, ‘वरमास इह अरुहः’ ( अ. १०।४।६ ) अत्र सर्पार्थः सद्य एव । एवं निषण्डु-सद्य-वेदे यदि यौगिक



(७) अथर्व वेदे—सुहवमग्ने ! कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शम्  
 आर्द्रा पुनर्वसु सूतता चारु भानुराश्लेषा अयनं मघा मे' ( १६।७२ ) पुण्यं पूर्वा  
 फल्गुन्यौ चात्र हस्तः चित्राशिवा स्वाति सुर्यो मे अस्तु । राधे विशाखे सुहवाऽ-  
 नुराया ज्येष्ठा मुनक्षत्रमरिष्टमूलम् ( १ । ७३ ) अन्नं पूर्वा रासतामे आपादां अन्नं देवी  
 उत्तरा आवहन्तु । अभिजिद् मे रासता पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठा ( धनिष्ठा )  
 कुर्वाता सुपुष्टिम् ( १६।७४ ) आमे महन् शतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा  
 ( पूर्वाभाद्रपदाउत्तराभाद्रपदा ) नुराम् आरेवती पाश्र्वयुजो ( अश्विनो ) भगं मे रयि  
 भरण्य आवहन्तु ( अ. १६।७५ ) इति मंत्रेषु कमशोऽशविशतितन्त्रज्ञाना रुद्रिनाम,  
 तेभ्यः फलित ज्योतिषवत् फल्याणादि प्रार्थना च । 'शं नो महाभ्रान्द्रममाः शमा-  
 द्वित्यथ राहुणा शं नो मृत्युर्धूमकेतुः ( अ. १६।६।१० ) अत्र चन्द्रमूर्धराहुत्वादि-  
 प्रहाणा रुद्र्या वर्णनम्, तेभ्यः फल्याणप्रार्थना च ।

'सूर्याचन्द्रमसौधाता यथा पूर्वमवल्लयद् दिवं च पृथिवीषान्निविद्धमथो स्व'  
 ( श्रु० १०।१६०।३ ) अस्यार्थः स्वामी दयानन्देन 'श्रुग्देशादि भाष्य भूमिहायाः' २८  
 श्लोके इत्थं कृतः 'सूर्यचन्द्र प्रदणमुपलक्षणार्थम् । यथा पूर्व का रे मूर्धराहुः इति रचनं तत्र  
 तान मध्ये ह्यासीत्, तथैव तेन अग्निम् बल्येऽपि रचनं कृतं' अत्र स्वामिना भूतहाऽत्र  
 अर्थः कृतः ।

श्रीश्यामि-शंकराचार्यणापि अयं मन्त्र इत्थमर्थारित — यथा पूर्वमन्त्र - इति  
 सूर्याचन्द्रमसः प्रभृति जगत्कल्पम्, तथाऽग्निमन्नपि बल्ये परमेश्वरोऽव्यक्तस्य इत्यर्थः  
 ( वेदान्तदर्शने १।१।० ) 'नासदासीत्, नो सदासीत् तदानेन' ( श्रु० १०।१६०।१ )  
 'तम आसीत् तमसा ( १०।१६०।३ ) इति भूतकालिकं वर्णनं स्पष्टम् 'अन्वे । देव्युत्पत्तेः  
 ( श्रु० १।२।७।४ ) इति मन्त्र भाष्ये श्री दयानन्दस्वामिना श्लोकेन— हे अन्नन्त विष्ट बर !  
 जगदीश्वर ! देवेषु सृष्ट्यादि जातेषु अग्निवायुः इत्यादिभिरनु सन्तुष्टेषु देवेषु  
 भोत्तरान' अत्र स्वामिना वेदे एव वेदपाठकानामन्त्रादेन कृतं— अन्तरे व वे  
 १. यथाः विन्तु, अद्भिरोवन्नं देवाः वर्णनं कृतम् ।

इदानीं पूर्वमन्त्रान् समुत्वा इदं बाध्यं यत् किं ( श्रु० १०।१६०।३ ) मन्त्र पूर्वमन्त्र  
 इति बल्यस्य सूर्यचन्द्रादिरचनातः परचाभिमित १ किं २८ अत्र यथा रचनेऽत्र  
 एव 'अथर्ववेदः' प्रयोगः किम् ( श्रु० १०।१७४ ) मन्त्र सुविन्दे १ ) वेदव्युत्पत्तेः  
 इति १ इति तदाहो अन्नन्तो अविष्टवत्पत्त्या सक्तं विन्तेतु, इति इत्यन्तरे-  
 यथा इति तत्र १ शक्यम् । अथ द्योतिकता भाष्ये देवा इत्या अन्तरे १-२० अत्र  
 इति द्योतिकता भाष्ये देवा इत्या अन्तरे १-२० अत्र इति द्योतिकता भाष्ये देवा इत्या अन्तरे १-२० अत्र









# श्रौत-स्मार्त-पौराण-देवता-विमर्शः

ले०—महायाज्ञिक-वैदिकसार्धभौम-पुराणवाचस्पति

पं० श्री भगवन् प्रसादजी मिश्र महोदयाः,

प्रोफेसर

गवर्नमेण्ट संस्कृतकालेज, बनारस

आर्या हि भारतगौरवमूलभूते लोककल्याणसाधने वैदिके शब्दराशौ परं  
श्रद्धधानाः—

“यः समिधा य आहुतो यो देवेन द्वाश मर्त्यो अग्नये । यो नमसा स्वध्वरः  
तस्येदमवन्तो रंह्यन्त आशवस्तस्य द्युमितमं यशः । न तमंहो देवकृतं कुतश्चन न  
मर्त्यकृतं नशान्” इति, ( ऋ. ८।१६।५-६ )

“मोक्षमन्न विन्दते अप्रवेताः सत्य प्रवीमि यथ इत्स तस्य ।

नार्यमण पुप्यति नो सत्तायं केवलायो भवति केवलादौ ॥”

( ऋ. १०।११।५ ) ( तै. मा. २।८।८।३ ) ( ८३३ इति च )

तदीयमनुशासनं शिरसा हृदयेन च मन्यमाना अथवावद्यक्षादिकर्मानुतिष्ठन्ति ।  
यद्यपि पूर्वकालापेक्षया सम्प्रति सर्वस्यापि शास्त्रीयकर्मणो विशेषतश्च प्रत्यक्षधृतिसमुप-  
दिष्टस्य श्रौतकर्मणोऽनुष्ठानं न सन्तोषावहं भवतीत्यस्माकं काटशिक्षोभयकृतः प्रमाद-  
परिचय एव । तथापि बहुभिरनार्यैर्वदबैदिकविद्वेषिभिर्वा बहुवारं कर्ममार्गस्यास्यो-  
न्मूलनाय कृतेऽपि बहुविधे प्रयत्ने सारभूयिष्ठत्वादस्य ग्रन्थतः सम्प्रदायतश्चाधुन्य  
एवायं मार्गो विराजमान आस्ते । तत्र व्यक्तिशः कर्मणा भेदानन्त्येऽपि प्राधान्येन  
श्रौतस्मार्तपौराणिकभेदभिन्नतया त्रि वेधान्येव कर्माणि तत्र यानि हि प्रत्यक्षधृतिसमुप-  
दिष्टानि कर्माणि श्रौतानि, तेभ्यः स्मार्तेषु देवता-द्रव्यत्विगादिकंविषयकं द्विविधं  
वैदिकं ततोपिकं पौराणिकेषु कर्मसूत्रेभ्यते । तदत्र देवतानुपलक्ष्य किञ्चित् प्रभू-  
यते । यथाहि—

( १ ) वैदिकेषु केचन नेरुक्त्य लोकायाम्भयेन धमिरिन्द्रः मूर्ध-इति देवतात्रयं  
मन्वते । पौराणिकाश्च शिव-विष्णु-देवी-मूर्ध-विनायकेति प्राधान्येन पञ्चानां देवता-  
नामुशासनमुपादिरान्ति ।

एषस्या एव देवताया यज्ञि नामानि गुणतः कर्मतरश्च सम्भवन्तीत्युच्यते ।



( १० ) याज्ञिकाः पौराणिकाश्च देवतानां विप्रह्वस्त्वं बहुत्वं चाभिप्रयन्ति  
न तु मीमांसकवन्मन्त्रात्मकत्वम् ॥

( ११ ) श्रौते स्मार्ते च कर्मणि देवतायाः कदाचिद् विप्रह्वस्त्वाभ्युपगमेपि  
विप्रह्वस्य शिलाद्युपादानेन निर्माणविधानाभावात् तस्य प्रतिष्ठादि संस्कारस्य न्यासादि-  
न्यापारस्य च उपयोग एव नास्ति । पौराणे तु कर्मणि देवतायाः स्वानुरूपं विप्रह्वं  
वरचप्य तत्र सात्मकत्वविधानार्थं प्राणप्रतिष्ठार्थं च तत्तद्गोपु अभोष्टायादेवताया  
अनुरूपकलान्यासो विधीयमानो दृश्यते ।

( १२ ) श्रौतरस्मार्तयोर्देवतानामग्निमुखत्वं ब्राह्मणमुखत्वं च दृश्यते । पौराणि-  
कीनां प्रतिमात्मकाधिष्ठानमुखत्वमेकं विशिष्यते । तदधिष्ठानमुपादानादिभेदेन शिला-  
वर्णनादिभ्यं बहुविधं दृश्यते । तथा च—

शैली दारुमयी लौहो लेप्या लेहया च सेकतो ।

मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ।

( धीमन्नागवतम् )

प्रतिमासु च शुभ्रासु लिखित्या वा पटादिषु ।

अपि बाधत पुञ्जेषु,

( छन्दोगपरिशिष्टम् )

स्ववर्णवां पटलेह्या गन्धैर्मण्डलकेषु वा ।

( याज्ञवल्क्यस्मृतौ )

एतेष्वन्यतमे कल्पित आश्रये देवताधियात्तन्नाम्ना अर्चनाभिपेक्षादि  
विधीयते, कल्पितेष्व्वाश्रयेषु प्रतिष्ठापनपूर्वकमावाहनमायस्यकं भवति । शालग्राम-  
नर्बदेश्वरादि पुराणोक्त स्वयंसिद्धदेवताश्रयेषु आवाहनप्रतिष्ठादिदमन्तरापि पूजन-  
मभ्यनुष्ठाप्यते ।

( १३ ) देवतानां सर्वासामपि त्रिगुणातीत चिदात्मकत्वेन ऐहिक्येऽपि  
प्रयोजनानुरोधेन कृत्यभेदान्, गुणात्मवरूपभेदं परिग्रहवशेन व्यवहारभूमौ बहु-  
पत्वं दृश्यते ।

महाभाष्याद् देवताया ऐश्वर्यात् सर्वविधफलदानसामर्थ्ये सत्यपि उपासकानां  
कामनानुसारं तत्तत्कल्पप्राप्त्यर्थं शास्त्रविधानानुसारेण तत्तद्देवताया एव उपासनाया  
औचित्यं प्रतीयते—व्यवहारतः । देवताविशेषस्य शक्तिविशेषवत्त्वं नियतफलदान  
सामर्थ्यं च अनेनैव हेतुना पुराणेषु विशेषतः समुद्घोष्यते ।

तदेवमन्त्र मन्त्रिय निरूपिता संया देवता ।

पथास्यं शास्त्रविधेन समुपासिता सद्वुष्टिप्रदानेन मनुष्यजातिं विशेषतः  
शरद्भोति, इत्यौरभमिशो वेदोपदेशोऽत्रमाभिरधुनापि मोन्साहं पाटनैः च भेदम इति ।

॥ शिवम् ॥

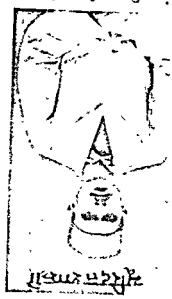




1911 12 15 16  
 1911 12 15 16



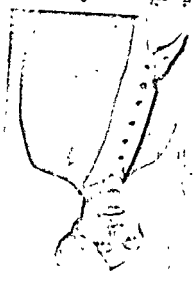
( 1911 12 15 )  
 1911 12 15 16



( 1911 12 15 ) 1911 12 15 16  
 1911 12 15 16



( 1911 12 15 ) 1911 12 15 16  
 1911 12 15 16





मृतम्, अथ चेदलं तन्मर्त्यमितिलक्षणमुक्त्वा, स एवाधस्तादित्यादिनां तदित-  
 ताभाव निर्दिश्य-अथात आत्मादेश ; आत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्ठादात्मापरचादात्मा  
 स्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैव सर्वमिति, निरतिशयानन्दस्वरूपात्मनएव  
 त्वं प्रसाध्य, एवं विजानत आत्मरत्यात्मक्रीडादिफलं मृते । वृहदारण्यकेऽपि,  
 स्वैवानन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति, इति भूमन् एव निर्देशः ।

अत्रेत्यं सिद्धान्तो विचारशीलानां, यद्यं जीव एव तावन्निरतिशयानन्दस्य  
 ममहतो भगवच्छब्दवाच्यस्य परमात्मन एवांश भूतः “ममेवांशो जीवलोके जीव-  
 नः सनातनः” इति गोतायां भगवदुक्तेः । केवलमविद्यादेव्याः कृपया पृथग्भूत  
 वृत्तस्वरूपः परिच्छिन्नश्च । एतादृशावस्थोऽपि स्वभायत एवं स्वोय मुख्य स्वरूपावाप्त्यै  
 तद्वेक्षणमुत्सुक एव । यथा पृथिव्याः पृथग्भूतो लोष्ट ऊर्ध्वं क्षिप्तोऽपि स्वभावत एव  
 धीबोमुत्सयाति । यथा वा सूयेत्रिभ्यात्पृथग्भूतश्याग्नेर्दीपस्य शिरसा स्वभावत एव  
 र्ध्वमुद्यो भवति । एवमविद्या वशातः परमानन्दघनपरममहद्द्रुपाद्भगवत आभि-  
 निकृष्टवक्त्रेऽपि तदंशत्वाद्धेतोः स्वरूपभूतमहत्सुख प्रावण्यं जीवस्य चेत् ? किमप्र-  
 यत्नम् । युक्तमेवेतत् सजातीयं सजातोयेनाकृष्यते इति वैज्ञानिक सिद्धान्तात् ।  
 यथा यानि गृहारागतनयजायाद्रवणजादिवृत्तिमुखानि यावत्स्वरूपानन्देनान्तर्भ-  
 वन्ति तावदनुभूयन्ते, पुनर्नावतिष्ठन्ते, अतएव यस्त्वन्तरजमुत्पापेभ्यः जायते ।  
 यामपि सैवावस्था । वृत्तिमुखानि च अनन्तानि परिच्छिन्नानि परिणामदुत्पायहानि  
 तस्येच्छाशान्त्यै पर्याप्तानि, अतो भूममुत्पातिरेव अधवास्य भूममुत्स्यरूपभाव  
 वेच्छानिवर्तकः सेयं परमानन्दस्वरूपावस्था । इतः परमेवंप्रथ्या भावादित्त्वा निरन्ते,  
 यमुत्तरेपरमासीमा जीवन्मुक्तावस्था च उच्यते । परमस्या धवस्थायाः कथं  
 गतिरिति किं कर्तव्यताविभूतं जीवं प्रति ब्रवीति करुणामयी भगवतो धृतिः—“आहार  
 गुदो संतरुद्धिः सत्वगुदो ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलभे सर्वप्रन्थीना विप्रमोक्षः” इति ।  
 अथच्छेदकोपाधिनिवृत्तिमन्तरा न, जीवस्य भूमता, तन्निवृत्तिश्चान्तःकरणगुट्टि-  
 मपेक्षते, तच्छुद्धिरप आहारगुट्टिं विना न, ‘आह्वियन्त इत्याहाराः शब्दाद्विषया-  
 तेषां गुट्टिरप रागादिद्वैपैरसंसर्गं, तस्या जाताया सत्तरस्यान्तःकरणस्य गुट्टिर्विमला  
 भवति ।’ गोतायामेतेषां उक्तो भगवता यथा—

“इन्द्रियस्वेन्द्रियत्वायं रागद्वेषो व्यवस्थितो ।  
 तयोर्न वसमागच्छेत्तौ ह्यन्व परिपन्थिनौ ॥  
 रागद्वेषवियुक्तं च विषयानिन्द्रियेष्वरम् ।  
 आत्मसर्वेन्द्रियभवा प्रसादनात्तन्मोक्षः ॥”



विशिष्टं काव्यालंकारत्वं च उक्तं तत्रैव । अतएव साहित्यस्य शास्त्रत्वम् । साहित्यस्य शास्त्रत्वम् इति स्वपुस्तकेषु अभिनवगुप्ताचार्याः साहित्यस्य शास्त्रत्वम् स्वीकुर्वन्ति एव । कविकुलशेखरः श्रीराजशेखरोऽपि काव्यमीमांसायाम् “पंचमी साहित्य विद्येति यायावरीयः” सा हि चतुष्टयीनामपि विद्यानां निरस्यन्दः इत्युपवर्णयन् साहित्यस्य शास्त्रत्वं निर्विवादमुररीकरोति ।

साहित्यस्य परमं रहस्यं रसश्च साक्षाद् भगवती श्रुतिरपि प्रतिपादयति ।

“रसा वै सः” “रसं होवायं लब्ध्वा आनन्दो भवति ।” एवञ्च कमध्यनधिगतमयं प्रतिपादयन् साहित्यम् शास्त्रपदवीं प्राप्तुम् समर्थम् । अतएव नाभय्याः, नासुन्दराः, नारुन्तुदो न रुक्षाः, नोपेक्षिताः पदार्थाः कविसहृदयशिरोमणिभिः काव्यकर्मणं समाद्रियन्ते ।

किन्तु अनाप्राताः सुमनस इव लोभनीयाः सौन्दर्यसार सन्भृताः शर्कराकरम्बितदुग्धधारातोऽप्यभ्यधिकमधुराः सर्धधाभिनवाः उच्छलत्तरङ्गभङ्ग इव रसवृष्टिभिराद्रंयन्तोऽर्थाः कविभिः संगुध्यन्ते । एवं लौकिकाः शास्त्रान्तरप्रसिद्धिभाजोऽपि वस्तुभेदाः कविप्रतिभासंस्कृताः सन्निवेशविशेषवशमापद्यमानाः निर्माणकूटतट्टाः सहृदय हृदय प्रविष्टाः रसनिर्म्करान् प्रवाहयन्ति ।

अतएव ते कवयः अपरे प्रजापतय एव अतएव मुकयेः काव्ये स्वातन्त्र्यमुपदिशन्तः श्रीमदाचार्यानन्दवर्धनाः विषयमेनमुपोद्बलयन्ति ।

अपरे काव्य संसारे कविंकः प्रजापतिः ।

यथास्त्री रोचने विषय तपंरं परिवर्तते ॥

श्र गारी चैत्कविः काव्ये ज्ञात रममय जगत् ।

स एव धीतरागाद्येत् नोरम सर्वमैव तत् ॥

भावानचेतनानपि चेतनवत् चेतनानचेतनवत् व्यवहारयति यदर्थं मुहवि-  
काव्ये स्वतन्त्रतयेतिदिष्ट् ।



इति पारमर्षं वचनं सर्वदैव हृदि ध्येयम् ।

अधुनाचोपाक्रम्यते गीतासिद्धान्त विषयकं किञ्चित् । कर्माणि मनसा  
वचसा कायेन च प्रतिक्षणं यथाप्रकृति विधीयन्त एव सर्वजन्तुभिः ।

“नहि कश्चिन् क्षणमपि जातु निश्चयमकुरु” (गी० ३।८)

स्वरूपेण कर्मत्यागपक्षोऽसम्भाव्यत्वेन गीताकर्तुरसम्मतः । “नास्त्यकृतः कृतेन”  
“न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशु.” “तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते,  
एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते” इत्यादि श्रुतिभिः, “कर्मणा बध्यते जन्तुः”  
“अविरोधितया कर्म नाविद्या विनिवर्तयेत्” “क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति” इत्यादि  
स्मृतिभिश्च कर्मणा बन्धकत्वं मोक्षानुपायत्वं च तत्कलस्य पुनरनित्यत्वं विस्पष्टं  
प्रतिपादितम् । एवं तुल्यबलविरोधे ‘कः पन्थाः’ इति सन्दिहानं साधकं प्रति साहाय्यं  
सद्गमयन्ती निःसंशयमुच्चैस्तरं ब्रूते भगवतो गीता—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।

सिद्ध्यनिर्ग्रहोः समो भूत्वा समत्व योग उच्यते । (गी० २।४.)

एष कर्मयोगोपदेशः । अत्र द्वौ सोपानौ फलासक्तिपरित्यागः, सिध्यसिद्धि-  
साम्यं च ।

लोकेन वन्देन च विहितः कर्तव्यकर्मफलापोऽनुष्ठेय एव, न कदापि परित्याग्यः ।

“मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तित” (गी० १।८)

कर्तव्य कर्मणा पावनत्वेन ‘यज्ञ’ पदेनाभिधानम् । तेषामप्यनुष्ठानं फलाभि-  
सन्धिबद्धितेन सता कर्तव्यं न सकामेन । कृते च कर्मणि फलस्य सिद्धावसिद्धौ च  
तुल्यादरेण भाव्यम् । एवं निष्कामेन समसुद्धिना कृतानि कर्माणि न कदाचिदपि  
बन्धकानि मोक्षमार्गावरोधकानि वा भवन्ति, प्रत्युत चेतोमलविगुह्ये तद्द्वारा  
मुक्तिलाभाय च फल्यन्ते । तथा ह्युक्तम्—

(क) यज्ञायां कर्मयोग्यत्र लोकोव कर्मबन्धवः ।

तद्यथेह कर्म कर्तव्ये ? शुभमङ्गः समाखर ४ (गी० ३।८)

(ख) कर्मज बुद्धिपुत्र इह फल त्यक्त्वा सर्वोपयुक्त ।

जन्मबन्धवित्रमोक्षाः एव गण्डः एव. एवम् ४ (गी० ०.४.)

(ग) समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्याय च विद्यायै, (गी० ३।१४)

(घ) यज्ञदानतपः कर्म च त्यागः कर्मवैव ३१ ।

यज्ञो ह्येव तपश्चैव पावनतप सर्वोपयुक्तः



द्वयप्लायामह । किञ्चदकोट्टिको लब्धप्रवशाऽपि मतग्राहृत्य अन्येवग न किञ्चिदपि क्तुं पारयति । विदेशीभाजभाषाविस्मृतसंस्कृतभाषागौरवाः संस्कृतस्नेहवर्जिताश्च जना प्रतिदिनं भाषामिमामुन्मूलयितुं चेष्टन्ते ।

अतोऽयन्तावश्यकताऽग्नि यत् संस्कृतज्ञा राजनीती प्रभूतं भागं गृहणीयुः । अधिकसंख्यायां तत्र प्रविश्य ययं स्वकीयाम् अभीष्टा ध्वनिमधिकारिवर्गस्य श्रोत्रेषु क्षेप्तुं शक्यामः । जनमाधारणैर्विस्मृतप्रायं संस्कृतभाषामाहात्म्यं पुनरस्माभिरुचैः स्मायम् । यतस्ते संस्कृतज्ञेदशीला भययुः ।

त्यक्त प्रादेशिकभावना सर्वत्र लब्धसम्माना सुरेरपि अभ्यर्च्यमाना न केवलं भारते प्रत्युत विदेशेष्वपि गीतगौरवा गोर्वाणगीरियं पशुते पाशुते च । अस्या एव चरणशरणीकृत्य शैशवसंन्यस्त संगृतिमायः स्वामी शंकराचार्यः स्वसिद्धान्तं निखिले भारते प्रचचार । तथैव वयमपि अपिहितवदना अस्या अनुग्रहेण सर्वान् संस्कृतज्ञान अविच्छिन्नक सूत्रे प्रधितुं प्रभवामः । एतदधं कतिपयाना संस्कृतोत्थानवद्धकटीनां कर्मवीरप्रचारकाणामावश्यकतास्ति । ये सर्वप्रदेशेषु भ्रमन्तः संघटनं कुर्युः । यदि नाधिका पूरं शक्तिस्तर्हि राजस्थानीयाना संस्कृतज्ञानामेव संघटनं विधेयम् । यथापि संस्कृत-संस्कृतन-संख्या प्रचलति मन्दगत्या तस्यां स्फूर्तिं भरणाय कर्मठ कार्यकर्तृणामभाव एव दृश्यते । अस्माभिः शीघ्रं सम्मिल्य तस्याः वृहदधिवेशनस्य कृते प्रयतितव्यम् । संस्कृतपरीक्षोत्तीर्णा अपि सर्वत्र कार्यालयेषु कार्यं कर्तुम् क्षमा भवेयु इत्यपि चेष्टितव्यम् । साम्प्रतं तु अस्माकं परित्यज्य विद्यालयान् नान्यत्र प्रवेशायकाराः । तत्रापि एकोट्टिको वा अध्यापको विलोक्यते । तस्यापि वेतनं न्यूनम् अन्यविषयाध्यापकेभ्यः । एषा विषमता न सोढुं शक्या । आंग्ल विद्यालयेषु अपि बहुषु याणिज्य विज्ञानादि आवश्यकेषु वैकल्पिकेषु विषयेषु संस्कृतस्यनिहितत्वात् अल्पा एव छात्राः संस्कृतं गृह्णन्ति । बहुषु विद्यालयेषु कालेजेषु च द्वित्रा एव छात्रा दृश्यन्ते । केषु चित् नितान्ता भाव एव । दोषमिमं दूरी कर्तुम् संस्कृतस्यानिवार्यतायै प्रचलान्दोलनावश्यकता धो भूयते । कालेजेषु केवलं एम. ए. परीक्षोत्तीर्णा एव अध्यापका गृह्णन्ते । न शास्त्रिण आचार्याश्च यदा इमे तेभ्योऽधिकतरा योग्या भवन्ति । यदा साम्प्रतं बहुभिर्विश्वविद्यालयैः राष्ट्रभाषा हिन्दी माध्यमः स्वीकृतः तदा का नाम आवश्यकता आंग्ल भाषायाः । एवं कुठाराघातमपि अपनेतुम् चेष्टितव्यम् । एतदपि निर्णीतम् अधिकारिभिः यदपि वर्षान् राजस्थान काश्यां जयपुरे स्थितः विश्वविद्यालयः हाईस्कूल वक्षायाः एकरकारेण संस्कृतं





। च राजनीती प्रवेष्टुं वयमुन्मदमहे । अस्मान् श्रेयान् तु दूरादेव अलयः चम्पका-  
 देव प्लायामहे । कश्चिदेकोद्विरोऽप्यप्रदेशोऽपि मतग्राह्ये अन्ययगे न किञ्चिदपि  
 लुं पारयति । विदेशीभाषाभाषाविमृतसंस्कृतभाषागौरवाः संस्कृतनेह्वजिताश्च  
 वना प्रतिदिनं भाषामिमानुन्मूलयिषुं वेष्टन्ते ।

अतोऽयन्नायस्यकृताऽस्मि यत् संस्कृतज्ञा राजनीती प्रभूतं भागं गृहणीयुः ।  
 अधिकसंख्यायां तत्र प्रविश्य ययं स्वकीयाम् अभीष्टा ध्वनिमधिसारिवर्गस्य श्रेष्ठेषु  
 श्रेष्ठेषु शक्यामः । जनसाधारणविमृतप्रायं संस्कृतभाषामाहात्म्यं पुनरस्माभिरुचैः  
 लायम् । यतस्ते संस्कृतनेह्रशीला भवेयुः ।

त्यक्त प्रादेशिकभाषना मर्दत्र लक्ष्यमस्माना सुरंरपि अभ्यर्च्यमाना न केवलं  
 भारते प्रत्युत् विदेशेष्वपि गीतगौरवा गोर्वाणगौरियं पश्रुते पाठ्यते च । अस्या एव  
 परणशरणीकृत्य शोशयसंन्यास संगृतिमाय. भ्यामी शंकराचार्यः स्वसिद्धान्तं निखिले  
 भारते प्रचचार । तथैव ययमपि अपिहितयदना अस्या अनुपदेण सर्वान् संस्कृतज्ञान  
 अविच्छिन्नैक सूत्रं प्रथितुं प्रभवामः । एतदर्थं कतिपयानां संस्कृतोत्थानपद्धकटीनां  
 कर्मवीरप्रचारकाणामावश्यकतासि । ये सर्वप्रदेशेषु भ्रमन्तः संघटनं कुर्युः । यदि  
 नाधिका पूर्वं शक्तिरर्हि राजाधानीयानां संस्कृतज्ञानामेव संघटनं विधेयम् ।  
 रथापि संस्कृत-संस्करण-संस्था प्रचलति मन्दगत्या तस्यां स्फूर्तिं भरणाय कर्मठ  
 कायकर्तृणांभाव एव दृश्यते । अस्माभिः शीघ्रं सम्मिल्य तस्याः गृहदधिवेशनस्य  
 कृते प्रयतितव्यम् । संस्कृतपरीक्षोत्तीर्णा अपि सर्वत्र कार्यालयेषु कार्यं कर्तुम् क्षमा  
 भवेयु इत्यपि चेष्टितव्यम् । साम्प्रतं तु अस्माकं परित्यज्य विद्यालयान् नान्यत्र  
 प्रवेशायकाशः । तत्रापि एकोद्विको वा अध्यापको विलोक्यते । तस्यापि वेतनं  
 न्यूनम् अन्यविषयाभ्यापकेभ्यः । एषा विषमता न सोढुं शक्या । आंगल  
 विद्यालयेषु अपि बहुषु याजिष्य विज्ञानादि आवश्यकेषु वैकल्पिकेषु विषयेषु संस्कृ-  
 तस्यनिहितत्वात् अल्पा एव छात्राः संस्कृतं गृह्णन्ति । बहुषु विद्यालयेषु कालेजेषु च  
 द्वित्रा एव छात्रा दृश्यन्ते । केषु चित् नितान्ता भाव एव । दोषमिमं दूरी कर्तुम्  
 संस्कृतस्यानिवार्यतायै प्रचलान्दोलनावश्यकता वो भूयते । कालेजेषु केवलं एम. ए.  
 परीक्षोत्तीर्णा एव अध्यापका गृह्णन्ते । न शास्त्रिण आचार्याश्च यदा इमे तेभ्योऽधि-  
 कतरा योग्या भवन्ति । यदा साम्प्रतं बहुभिर्विश्वविद्यालयैः राष्ट्रभाषा हिन्दी  
 माध्यमः स्वीकृतः तदा का नाम आवश्यकता आंग्ल भाषायाः । एवं कुठाराघात-  
 मपि धपनेतुम् चेष्टितव्यम् । एतदपि निर्णीतम् अधिकारिभिः यदप्रिम वर्षान् राज-  
 स्थान कार्या जयपुरे स्थितः विश्वविद्यालयः हाईस्कूल वक्षायाः एकप्रकारेण संस्कृतं



# संस्कृत-साहित्य पर एक दृष्टि

पं० नवरंगराय जी शास्त्री

प्रधान अध्यापक, टीकमाणी वेद-वेदांग विद्यालय, राजगढ़

धर्माचार्यों का सदा से यही मत रहा है कि भाषा की उत्पत्ति ईश्वर से है। इस विषय में अनेक धर्माचार्यों ने अपनी-अपनी भाषाओं को आदि माना है, किन्तु जब हमारी दृष्टि अनेक भाषाओं के मूल स्रोत की ओर जाती है, तब हमें यह अच्छी तरह ज्ञात हो जाता है कि वैदिककालीन भाषा सभ से पहले की भाषा होनी चाहिए। और आज के भाषा तत्त्ववेत्ताओं ने यह अच्छी प्रकार सिद्ध कर दिया है कि वेद सभ से प्राचीन भाषा का उत्कृष्ट नमूना है। हमारे यहां के आचार्यों का भी यही मत रहा है कि भाषा की उत्पत्ति दिव्योत्पत्ति है। भाष्यकारों का मत है कि ईश्वर ने ऋषियों को भाषा सिखाई और ऋषियों से ही भाषा का स्रोत चला। निरुक्त को भाषा-विज्ञान का सर्वोत्कृष्ट और सर्वप्रथम ग्रंथ कहने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी। निरुक्त का मत है कि प्रवरों ने औरों को भाषा बताई और तभी से भाषा का प्रवाह चला। मनुस्मृतिकार का मत है कि वेदों की उत्पत्ति ओंकार से है। ऋषा के मुख से सर्वप्रथम ओंकार का उच्चारण हुआ, जिससे वेदों का निर्माण हुआ। आज के भाषातत्त्ववेत्ता इस बात को मानें अथवा न मानें, किन्तु मनुस्मृतिकार का मत कुछ अंश तक ठीक ही है। आज के भाषातत्त्ववेत्ता दिव्योत्पत्ति के सिद्धान्त से सहमत नहीं हैं। तथापि वेद की प्राचीनता में तो किसी को कोई सन्देह है ही नहीं। परीक्षा करने पर वेद भारतीय ही नहीं, संसार की बहुत-सी अन्य भाषाओं का भी आदिस्त्रोत निकलेगा। किसी रसु का जब निर्माण होता है, तब वह छोटे रूप में होता है। किन्तु जब उसका विकास होता है, तब वह सुबिस्तीर्ण बन जाती है। ठीक इसी प्रकार हमारे वेद का विकसित एवं सुबिस्तीर्णरूप संस्कृत हुआ।

एक भाषा का प्रवाहकाल क्रमशः चलता रहता है। इसी प्रकार वेद-भाषा का प्रवाह सुरिल्लट संस्कृत के रूप में परिवर्तित हुआ। इस काल के आचार्यों ने वेद-भाषा को शुद्ध एवं परिमार्जित कर संस्कृत नाम से प्रसिद्ध किया। संस्कृत ही ने देश को राष्ट्रभाषा का शुभ किरिट पहना और अपनी मौलिकता, सरलता एवं सुशुद्धता के कारण देश में सर्वसाधारण की भाषा संस्कृत हो गई, जिनमें सुदूर पश्चिम से दक्षिण तक, पश्चिम से पूर्व तक भारत एकता के सूत्र में बंधा रहा। विदेशों



यद्यपि संस्कृत-साहित्य की अभिवृद्धि होती रही, तथापि इस ग्रंथ के समान अन्य ग्रंथ का निर्माण नहीं हो सका। इस काल के बाद महाभारत-काल में फिर से भगवान् वेदव्यास ने संस्कृत-साहित्य की बहुत अभिवृद्धि की। व्यास जी ने पुराणों के अतिरिक्त महाभारत, वेदान्त-दर्शन का भी निर्माण किया है। भारत तथा भारतीय जनता का मस्तक रामायण-एवम् महाभारत ने उन्नत कर दिया। राजर्षि वायु पुरुषोत्तम दास टण्डन ने महाराजा संस्कृत कालेज जयपुर में दीक्षान्त भाषण देते हुए कहा था कि 'मुझे भारत में जन्म लेने का गर्व है कि जिसमें रामायण तथा महाभारत जैसे ग्रंथ हैं। आज शेक्सपियर तथा मिल्टन का साहित्य सर्वोत्तम माना जाता है, पर मैं रामायण तथा महाभारत को पढ़ता हूँ, तब वह साहित्य मुझे वहाँ की तुल्य बोली के समान लगता है।' वास्तव में टण्डन जी का कहना सोल्ह आना सच है। आज भारत को इस बात का गर्व है कि भारतीयों ने ऐसे ग्रंथों का निर्माण किया कि जिनकी समानता करनेवाला कोई अन्य ग्रन्थ विश्व में आज तक नहीं बन सका।

भारतीय महर्षियों ने अपने निरन्तर परिश्रम से तथा सहस्रो वर्षों के अनुभव से उपनिषदों की रचना की, जो वेदों के कुछ ही काल बाद के कहे जा सकते हैं। उपनिषदों के अतिरिक्त न्याय-सांख्य आदि दर्शनों की रचना भी उन लोगों ने करने शुरू कर दी थी। जितने भी महामान्य महर्षि हमारे देश में हुए हैं, प्रायः सभी की दृष्टि ऊपर लिखित शास्त्रों की ओर अधिक रही। अतएव आज यूरोप में यह बात कही जाती है कि हमारा दर्शन जहाँ समाप्त होता है, वहाँ से भारतीय दर्शनशास्त्र का आरम्भ होता है। न्याय, मीमांसा तो इससे भी कहीं अधिक उन्नत हैं। मीमांसा का महत्त्व हमारे साहित्य में इस प्रकार वर्णित है। यथा—

नैयायिका वा ननु शाब्दिका वा ।  
 त्रयी शिरः सुप्रम शालिनो वा ॥  
 वादा इयं विप्रति जैमिनीय ,  
 न्यायो परोचे सति मीन मुदाम् ॥

हमें आश्चर्य तथा गर्व इस बात का है कि महर्षियों ने आयुर्वेद तथा ज्योतिष जैसे नौरस विषयों को भी अपनी कवित्वशक्ति द्वारा श्लोकमय बना कर सरस एवं जनप्रिय बनाया। ज्योतिष को वेदों का नेत्र बतलाया है और साहित्य में इसका महत्त्व इस प्रकार गाया गया है—

दूतो न सघरति ये न चन्ध वातां ।  
 पूर्व न जल्पितमिद् न च सगमोऽस्मि ॥



अङ्गीकृतं कोटिमितं च शास्त्रं नाङ्गीकृतं व्याकरणं नयेन ।  
न घोभते तस्य मुखारविन्दं सिन्दूरविन्दुर्विधवा ललाटे ॥

और भी कहा है कि—

यो वेद वेदं वदन् सदनं हि सम्यग्,  
ब्राह्म्या सवेदमपि वेदं किमन्य शास्त्रम् ।  
यस्मादतः प्रथममेतदधीत्य धीमान्  
शास्त्रान्तरस्य भवति ध्रुवणेऽधिकारी ॥

वैयाकरणभूषणकार ने तो यहाँ तक कह दिया है कि—

यद्यपि बहुनाधीपे पुत्र तथापि पठ व्याकरणम् ।

स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकल सकल सकृत् सकृत् ॥

वैसे तो संस्कृत-साहित्य के सभी विषय परिपूर्ण हैं, परन्तु व्याकरण को सबसे उत्कृष्ट कहा जा सकता है। केवल व्याकरण का ज्ञान अच्छी प्रकार कर लेने पर सारा साहित्य ही उसके अधिकार में आ जाता है। वाल्मीकी रामायण में एक जगह वर्णन है कि जब पहले-पहल श्री रामचन्द्र जी की हनुमान जी से भेंट हुई तो हनुमान जी ने वार्तालाप में सर्वत्र द्विवचन का ही प्रयोग किया था। उस समय रामचन्द्र जी ने प्रसन्न होकर कहा था कि—नूनं कृत्स्नं व्याकरणमनेन बहुधा श्रुतम्।

आज जब हम सहस्रों वर्षों तक परतन्त्रता की घेड़ियों में जकड़े रहे, तो यह बात हमें असम्भव-सी प्रतीत होने लग गई है। परन्तु यह बात नहीं है कि रामायण में लिखा हुआ गलत है। रामायण में जो भी सुझा दिया है, वह वास्तव में सत्य है। यूरोप के बहुत से विद्वानों ने सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य की उत्पत्ति बानर से हुई है। इस बात का प्रमाण हमें भविष्य पुराण से भी मिलता है, जो यूरोपियन कहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पहले प्रायः सभी जीव मनुष्य की तरह जानकार होते थे। यही कारण था कि रामचन्द्र जी ने रोंड़ और बानरों की सेना बनाकर लंका पर विजय पा ली। अर्थात् रामायण में भी एक जगह इस प्रकार का प्रसंग आता है कि हनुमान जी ने तूय से व्याकरण पढ़ा था। इस बात को कोई माने अथवा न माने, किन्तु मुझे तो सबेधा सत्य ही मालूम होती है। हमारा देश सभी प्रकार से विश्व के सभी देशों से उन्नत था। आज अमेरिका और ब्रिटेन कुछ उन्नत हैं, तो अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रिय भाषा बन गयी है। इसके अतिरिक्त भी जीविका चलाने के लिए अंग्रेजी पढ़ना जरूरी है। यही बात शास्त्र-शास्त्रों में संस्कृत का था। जब हमारा देश उन्नत था, तब हमारी भाषा भी उन्नत थी। किन्तु देश की अवस्था गिरने पर भी संस्कृत का महत्त्व कम नहीं हुआ।





अशोक के समय से पहले ही बौद्धधर्म के संसर्ग से देश के पूर्व भाग में प्राकृत का प्रचार कुञ्ज रूप में हुआ था। लेकिन जब तक अशोक ने बौद्धधर्म प्रदण नहीं किया था तब तक देश में प्राकृत का महत्त्व नहीं बढ़ सका था; वह देश के एक ही कोने में दबो रही, परन्तु अशोक ने जब बौद्धधर्म प्रदण किया तो बौद्ध होने के नाते उन्होंने प्राकृत को अपने बृहद् साम्राज्य की राष्ट्रभाषा बना दी। अशोक के समय में यद्यपि संस्कृत का महत्त्व नहीं रहा तथापि अपनी शिक्षापूर्ति के लिए विद्वानों को संस्कृत का अध्ययन करना ही पड़ता था। इस प्रकार राष्ट्रभाषा प्राकृत होते हुए भी संस्कृत का महत्त्व विद्वत् समाज में तो था ही। अशोक के समय में देश में बौद्धधर्म का प्रचार पूर्णतया होने के कारण जनसाधारण की भाषा तो पाली ही थी। परन्तु विद्वानों का व्यवहार तो संस्कृत भाषा से होता था; किन्तु अशोक के समय के पश्चात् देश में संस्कृत का सम्मान नहीं रहा। इस काल में भाषा, धर्म और संस्कृति का प्रायः हास हो चुका था।

श्री शंकराचार्य जी के आविर्भाव के समय तथा मध्यकाल में जिस देश में धर्म, संस्कृति, सभ्यता एवं प्राचीन भाषा का प्रायः दास हो चुका था, उस विकट समय में प्राचीन गौरव को पुनः स्थापित करने के लिये भगवान् शंकराचार्य जी अवतीर्ण हुए। पूज्यपाद शंकराचार्य जी महाराज ने प्राचीन धर्म तथा संस्कृति का जब प्रचार करना गुरु किया तब उन्होंने प्रचार के लिये संस्कृत को ही चुना। शंकराचार्य जी ने उपनिषदों पर भाष्य संस्कृत में ही किया। जो भी उन्होंने कुछ लिखा संस्कृत में ही लिखा। इस प्रकार देश में सनातनधर्म के प्रचार के साथ-साथ संस्कृत का प्रचार भी पूर्णतया हो गया। भगवान् शंकर के निर्वाण के बाद महाराजा विक्रमादित्य का एक छत्र राज्य भारत में हुआ। विक्रमादित्य के प्रथम में आकर संस्कृत का प्रचार फिर देश में हुआ। इसी समय देश में कालिदास जैसे महाकवि का जन्म हुआ। महाकवि कालिदास विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक थे। इस बात की पुष्टि उनके कई नाटकों से होती है। महाकवि कालिदास ने कुमारसंभव, मेघदूत, रघुवंश, विक्रमोदरशीय तथा प्रसिद्ध नाटक राघुनन्दन का निर्माण इसी समय में किया था। कई विद्वानों की धारणा है कि महाकवि कालिदास महाराजा भोज के समय में हुए थे। यह बात भी कुछ संतान-सो मान्य होती है, क्योंकि भोज की सभा में भी कालिदास नाम का कवि था। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि महाकवि कालिदास यही था। महाकवि कालिदास के अतिरिक्त इस समय अर्जुनदरि भी हुए थे, जिनके बन के दूर दूर



अलाहदीन के परचात् भारत में मुगलों का साम्राज्य हुआ। बाबर और हुमायूँ के काल में मुगलों के पैर भारत में अच्छी तरह नहीं जमे थे। हुमायूँ के परचात् अकबर ने अपनी सर्वप्रिय नीति के कारण मेवाड़ को छोड़कर समस्त भारत पर एक छत्र राज्य कर लिया। अकबर स्वयं पढ़ा-लिखा न होने पर भी विद्वानों का बड़ा आदर करता था।

अकबर के काल में संस्कृत-साहित्य के बहुत से द्रश्य तथा श्रव्य काव्य लिखे गये। अकबर के बाद जहांगीर भारत का बादशाह हुआ। जहांगीर के समय में भी संस्कृत-साहित्य के कई ग्रन्थ लिखे गये। इसके बाद शाहजहाँ का शासन भारत पर हुआ। शाहजहाँ स्वयं एक विद्वान शासक था और विद्वत्प्रिय भी था। शाहजहाँ के काल में सिद्धान्त-कौमुदी (व्याकरण) भट्टवि दीक्षित ने लिखी थी। अनुभूति स्वरूपाचार्य ने सारस्वत तथा रामाश्रम ने सिद्धान्त-चन्द्रिका इसी काल में लिखी। पण्डितराज जगन्नाथ ने रसगंगाधर इसी काल में लिखा। सम्भवतः ध्वन्यालोक भी इसी काल में लिखा गया होगा। जयदेव ने अपना चन्द्रलोक भी इसी समय में लिखा होगा। संस्कृत और हिन्दी-साहित्य दोनों ही के लिए शाहजहाँ का समय बहुत ही उपयुक्त रहा। वैसे तो प्रत्येक मुगल बादशाह ने संस्कृत-साहित्य तथा हिन्दी-साहित्य की सेवाएँ की थीं। किन्तु शाहजहाँ का काल हमारी भाषाओं के इतिहास में स्वर्ण-अक्षरों में लिखा जायगा। शाहजहाँ के बाद भारत का बादशाह औरंगजेब हुआ, जो अपनी धर्मान्धता के कारण एक कट्टर शासक रहा। सुना जाता है कि औरंगजेब के काल में संस्कृत-साहित्य के कई ग्रन्थ जला दिये गये। औरंगजेब के समय में यद्यपि हमारे साहित्य पर आघात हुए तथापि भारतमाता की बहुत सी लाडली संतानों ने अपनी भारतीयता के साथ अपने साहित्य को भी कुछ अंशों में बचा लिया।

उत्तर में गोविन्द सिंह, दक्षिण में छत्रसाल और शिवाजी, राजस्थान में जयसिंह और यशवन्त सिंह ने अपनी निधि को सुरक्षित रखा। औरंगजेब ने अपनी कट्टरता के कारण अकबर के द्वारा स्थापित साम्राज्य की जड़ को खोमला बना दिया। इसी कट्टरता के फलस्वरूप मुगलों का भी सर्वनाश हो गया। औरंगजेब के परचात् यद्यपि एक-दो बादशाह और भी हुए, परन्तु उनका इतिहास में कोई महत्त्व नहीं। इसकी अदूरदर्शी नीति के कारण ही भारत में अंग्रेजों का साम्राज्य हुआ। अंग्रेज पहले यही समझते थे कि भारतीय सदा से उरराम रहने वाले हैं अतः इनका साहित्य यहीं से आ सकता है। परन्तु जब अंग्रेजों का सामन

गया तब दयाद और मुकदमा में इनकी बहुत कठिनता ही थी  
है। सर विजयम गौस परदे एजेन्ट का काम करते थे। पर  
सेशन जब हुए। सेशन जब के पास दयाद सत्याजी मुकदमें बहुत  
गौस की इन मुकदमा में बहुत ही कठिनता पड़ती थी। गौस ने  
भारतीय भाषा का ध्यान करना चाहिए। अत्यधिक प्रयत्न करके  
क पठित ही ही रुपये मासिक वेतन पर नियुक्त किया। पठित  
थी उसके सामने रही और गौस ने सर्वत्र स्वीकार कर ली।  
का अध्ययन किया और मुकदमा तथा शकलता नोटक का अनुवाद  
11। मजसमि प्रायः सभी देशों के शासन-विधान में रही गई और  
क की देख कर लट्टे ही गये। उसी दिन से भारतीय साहित्य की बीज  
ने प्रारम्भ किया। जो आज तक परावर करते जा रहे हैं। यह बात  
कि अंग्रेजों की सदैव से ही दुर्गति नीति रही। लोक यही नीति  
में भी इन लोगों की रही। फिर से वे अंग्रेज लोग संजो  
ये, परन्तु भारत में संस्कृत-साहित्य की बुद्धि के लिए उन्होंने कोई  
1। संजोव के प्रकार विद्वानों तक का कोई सम्मान नहीं रहा।  
का कोई किवना ही विद्वान् कर्मा नहीं, परन्तु जब तक शैक्षिक तक  
व्यवस्था नहीं की गई, तब तक पढ़ा-लिखा कहाने का अधिकारी भी नहीं सम्मान  
के विद्वान् जीविका के लिए मारे-मारे भटकते रहे। परन्तु  
से कोई ध्यान नहीं दिया गया। अंग्रेजों का सदा से यही प्रयत्न  
संस्कृत न पढ़ें, बल्कि अपने साहित्य को भूल जायें। जिससे  
सदा के लिए रहें। मुझे लिखते हुए प्रसन्नता ही रही है कि  
कारण अथवा अन्य किसी कारणों से संस्कृत के विद्वानों की  
हमें गुरु सदा का है कि इस विषय का हमें संस्कृत के  
धर्म का ध्यान करना चाहिए। इस बात का ध्यान करना है  
वर्षों की युवा की रूढ़ि से है, परन्तु जब संस्कृत-साहित्य  
जाया, तब इन वर्षों में संस्कृत के नाम पर अंग्रेजों से लिखे  
क काम में संस्कृत का कोई महत्त्व नहीं रहा। लिखित प्राय

छड़के के सामने संस्कृत का आचार्य मूर्ख समझा गया ! स्कूल और कालेजों में भी संस्कृत को पर्याप्त महत्त्व नहीं दिया गया। जीविका चलाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अंग्रेजी पढ़ना अनिवार्य था।

इस प्रकार हम निरसंकोच कह सकते हैं कि बृटिश साम्राज्य संस्कृत के लिए अत्यन्त घातक रहा। इस काल में संस्कृत का विकास जैसा होना चाहिए था वैसा नहीं हो सका। संतोष इसी बात का है कि हमारे कर्मठ, पवित्र, पूजनीय विद्वानों ने इस निधि को सुरक्षित रखा। एक हजार वर्ष के पश्चात् लाखों विद्वानों के त्यागों से प्रसन्न होकर भगवान् ने हमें स्वतंत्रता प्रदान की। स्वतंत्रता मिलते ही देश में एक भयङ्कर तूफान आया। परन्तु देश के योग्य नेताओं ने इस विवट परिस्थिति में भी देश को बचा लिया। आज जब वह मङ्गावात कुछ कम हुआ तब देश में एक दूसरी लहर चल पड़ी, जो अब भी चल रही है। भिन्न-भिन्न प्रान्तों ने अपने-अपने प्रान्तों की भाषा को देश की राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयत्न किया और वह आज भी किया जा रहा है। भाषावार प्रान्त बनाने की मांग तो बहुत ही बलवती हो रही है। इसका विरोध देश के कर्णधारों ने किया और अब भी कर रहे हैं। बहुत से लोगों ने इसका समर्थन किया। अब भले ही वे विरोध करने लग जायें। यह जो प्रांतीयता का प्रचार किया जा रहा है, वह एक भाषा से ही रोका जा सकता है। आज देश की भिन्न-भिन्न भाषाओं में पचास प्रतिशत से अधिक शब्द संस्कृत के हैं।

तामिलनाडु में	६०%	आसामो में	५०%
तेलंगू में	८५%	गुजराती में	६०%
मराठी में	७०%	गुरुमुखी में	५०%
बंगला में	८०%	राजस्थानी	३०%
उड़िया में	६०%		

और हिन्दी तो संस्कृत से ही बनती है। यदि हिन्दी से संस्कृत को निवाल दिया जाय तो हिन्दी-भाषा का अस्तित्व ही नहीं रह जाता।

विश्व की प्रायः सभी भाषाओं से संस्कृत का सीधा सम्बन्ध है। उपरोक्त कारणों से संस्कृत भारत की ही नहीं, विश्व की एकता कराने में समर्थ हो सकती है। हमें हर्ष इस बात का है कि कायुल के विश्वविद्यालय ने संस्कृत को अनिवाये रख दिया है। यह उनका सही कदम है, जिसका हम तीस फरोड़ भारतीय



रान्द आसानी से मिलाया जा सकता है। विश्व की भाषायें प्रायः दो प्रकार की हैं—एक व्यास प्रधान दूसरी समास प्रधान। परन्तु संस्कृत में दोनों गुण हैं। यदि विवेक-पूर्ण दृष्टि से देखा जाय तो स्वतन्त्र भारत का बल्याण संस्कृत से ही है। इंग्लिश या हिन्दुस्तानी से नहीं। यद्यपि संस्कृत-साहित्य में सर्व विषय-पूर्ण हैं तथापि आध्यात्मिक विषय पर समस्त देश के महर्षियों, महाकवियों तथा अन्य विद्वानों का अधिक ध्यान रहा। अध्यात्म विषय के द्वारा ही हमारे यहाँ असम्भव को सम्भव कर दिया गया। आज विश्व जिसको विज्ञान के बल पर कर रहा है उसको हमारे यहाँ अध्यात्म बल पर पहले ही कर दिया गया। अध्यात्म-बलसे ही ऋषियों ने सम्राट वेन को हुंकार से पड़ाड़ दिया और उसके शरीर से पृथु जैसी शक्ति को निकाल लिया। विश्वामित्र ने अध्यात्मविद्या के प्रभाव से स्वर्गभृष्ट महाराजा त्रिशंकु को आकाश में ही धारण कर लिया। अतएव इसके लिये कहा गया कि—

येवी धी कारामान जो हार्थों को दित्ता दे ।

जिन्दों को कर मुर्दा मुर्दों को जिन्दा दे ।

यह तो रही आध्यात्मिकता की बात, परन्तु क्या वेद, क्या उपनिषद्, क्या पुराण, क्या उपपुराण, क्या धर्मशास्त्र, क्या दर्शनशास्त्र, क्या वैशान्त्य, क्या व्याख्या, क्या नाटक और क्या फौज—सभी विषय एक समान उन्मत्तते हुए मान्यमान हैं। जिस ओर दृष्टि दौड़ाओ उसी ओर वा भाण्डार परिपूर्ण झग होता है। जिस पर मूल्य दृष्टि से देखो, उधर यही सिद्धान्त छलकता हुआ दिख ई देता है।

अथ निजः परो वीत्त गणना लघु वेत्तमन्व

उदार चरितानां तु परुषेव कुम्भकम् ॥

हमारे देश के प्रायः सभी विद्वान् सभी विषयों के विद्व होते हुए भी विवेकहीन भाव रखते रहे हैं। अतएव देश ने बहुत काल से कहा जा रहा है क्या—

कान्यूष्जामः एता स्तोत्रान्मन्त्रानि च यः सुवे ।

किंवा कान्य रसः स्वादुः किंवा स्वल्पोपना २० ॥

यही कारण था कि हमारा देश विश्व का मुकुट समझा जाता था और विदेशी लोग भी इसे देखने की उत्कण्ठ अभिप्रेता किया करते थे। अन्त में किन्हीं दिनों के कवि ने कहा है—

यही है मूल्य दृष्टियों को, यही कथन कहने के ।

विदेशी लोग यह सब सब के, सब को समझते थे ॥

आज हमें यह असम्भव-सा मान्य पड़ता है, परन्तु अब भी कथन है कि हमें ही भारती की सेवा में लग जाना चाहिये, जिससे हम अन्तर्गत को समझ सकें।





बोधक माना जाता है। महाकवि दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श' में इस 'शब्द' को एक 'ज्योति' कहा है—

इदमन्व नमः कृत्स्न जायत भुवनत्रयम् ।

यदि शब्दाख्य ज्योतिरासंसारं न दीप्यते ॥

अर्थात्—यदि यह शब्द नामक ज्योति प्रकाशित नहीं होती तो यह समस्त विश्व अन्धकारमय हो जाता। घात ठीक है। कल्पना कीजिये यदि हम बोलना नहीं जानते, तो हमारे व्यवहारों का निर्वाह किस प्रकार होता? हम अपने मनोभावों को किस उपाय से व्यक्त करते? गूँगों के समान पाँच-सात वस्तुओं के लिए तो संकेतों से काम चला सकते थे। परन्तु संसार के अनन्त पदार्थों के बोधन का कोई उपाय नहीं था। आज की सी वैज्ञानिक उन्नति तो आपको दृष्टिगोचर हो ही नहीं सकती थी। जब वर्तमान पदार्थों के लिये ही एक दुरवस्था है तो भूत और भविष्यत् की वस्तुओं के लिये तो कहा ही क्या जा सकता है? यदि शब्दात्मक ज्योति हमारे पास नहीं होती, तो बड़े-बड़े महा-नुभावों की सुन्दर-सुन्दर कलाएँ, उत्तमोत्तम विचार, बड़े-बड़े गहन विज्ञान, शास्त्र आदि को हम किस प्रकार जान सकते? यह इसी शब्दात्मक ज्योति की कृपा है कि वेद, उरतिपद्, धर्मशास्त्र, पुराण, रामायण, महाभारत धम्मपद, जैनसूत्र आदि अपार ग्रन्थराशिका लाभ हम ले रहे हैं। विश्वविधाता भगवान् और उनके अवतार मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् राम, कृष्णचन्द्र आदि के पावन चरित्रों का परिज्ञान उस शब्दात्मक ज्योति की कृपा से ही हम कर रहे हैं। वाल्मीकि और तुलसीकृत रामायण ने ही भगवान् राम को हिन्दूजाति के रोम-रोम में रमा दिया है। उन्हीं की कृपा से हिन्दूजाति के निःश्वासोच्छ्वास में राम-राम का पवित्र उच्चारण होता है। श्रीमद्भागवत्, महाभारत, और श्रीमद्भगवद्गीता ने ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को हमारे जीवनसर्वस्व के रूप में हमें बोधित करा रखा है। यही घात, गौतम बुद्ध, स्वामी महावीर, जगद्गुरु शङ्कर, आदि महा-पुरुषों के सम्बन्ध में है। भौतिक शरीर से हमारे पास न रहते हुए भी यरा-शरीर से रात-दिन प्रकाशित होने वाले कालिदास, वाण, भवभूति, सुबन्धु, दण्डी माप, धोहर्ष, भारवि, भास, भट्टि आदि महाकवि भी इसी शब्द ज्योति के प्रपर प्रवाप से ही आज अमर हो सके हैं। यदि इस शब्दात्मक ज्योति की कृपा न होती तो, हम भी पशुओं की तरह आहार, निद्रा, भय आदि प्रवृत्तियों में ही निरत रहकर पशुजन्म बने रहते और सचमुच मनुष्य होते हुए भी वन-



कवि शब्द की इस व्यापक परिभाषा में ईश्वर से ले कर वर्तमान कवियों तक सबका समावेश हो जाता है। ईश्वरीय काव्य है 'वेद' और उसका अर्थ है विश्वप्रपञ्च। "कविर्मनीषो परिभूः स्वयम्भूः" यह वेद-वचन एवं 'कविं पुराणमनुरासितारम्' यह श्री मद्भगवद्गीतावचन ईश्वर को 'कवि' ही सिद्ध कर रहा है। 'वेदशब्देभ्य एव निर्ममौ' "भूतं भवद्भविष्यच्च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति" इत्यादि प्रमाण यह स्पष्टतया सिद्ध करते हैं कि वेदानुसार ही विश्वप्रपञ्च हुआ है। बात ठीक है, किसी वस्तु के निर्माण के पूर्व उसका नक्शा, खाका और शब्दात्मक योजना ( स्कीम ) तैयार की जाती है। बाद में निर्माण होता है। यही बात वेद और उसके द्वारा निर्मित विश्व के लिये लागू होती है। ईश्वर के बाद ऋषि और महर्षि, मुनि, आचार्य, पण्डित, आदि वे सब जिन्होंने विश्वहित के लिए इस वाङ्मय की प्रवाहधारा को सतत जीवित और प्रवाहित रखा है 'कवि' कहे जा सकते हैं। वेदिक ऋषि निरुक्त में भी 'विपक्वप्रक्ष विपक्वमनाः, क्रान्तदर्शी, विमर्षी, मनोपी को ही 'कवि' पतलाया है। विप्र मेधावी, विपन्यु, आदि उसके पर्याय हैं। लोच्युक्त को मोचो सतः से ढँचा उठकर, वस्तुवृत्त की लौकिकता में अलौकिकता की क्रान्ति पर ; उसे विश्व के लिए आनन्दप्रद उपादेय 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' बना देनेवाला महानद्दिम महनुभाह ही 'क्रान्तदर्शी कवि' हो सकता है। और यह एक ऋषि में ही पटित हो सकती है। अतएव 'नानृषिः कविः स्यात्। अर्थात् ऋषिभिन्न कवि नहीं हो सकता, ऐसा कहा गया है। इससे समझ में आ सकता है कि विश्व में कवि का क्या स्थान है और क्या महत्त्व है।

"न स शब्दो न तद्वाक्यं न सा विद्या न सा कला ।  
जायते एव काव्याङ्गमहो जाते महाम् बरे ॥"

अर्थात् संसार में ऐसा कोई शब्द, वाक्य, विद्या, कला, जो कवि की रचना में नहीं आ सकता है, अहो ! विश्वहित साधना में कवि के कर्तव्यों पर चिन्ता बर्बरता भार रखा हुआ है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि रचना-सौन्दर्य विद्वाना एक काव्य के लिए आवश्यक है, उतना ही किसी दूसरे विषय के ग्रन्थ के लिए भी। ऐसा नहीं है कि 'शुद्धीकामभ्यनिर्दमस्त्वरसहारो भाग्यभाक्' शब्दों का प्रयोग केवल काव्य में ही प्रभाक्षोत्रादक होता है, अन्यत्र नहीं।

आप हिन्दू-संस्कृति के किसी भी ग्रंथ या विषय को टठा देखिए। उसका अन्तिम लक्ष्य मोक्ष या मुक्ति मिलेगा। यही वह हिन्दू-संस्कृति और काव्य-रस का लक्ष्य है। और इस लक्ष्य के विषय के ग्रन्थकारों ने भी उक्त विन्दो का अन्तिम लक्ष्य चुना है।



कहानी, उपन्यास या नाटक आदि की परिधि या दायरे में ही घसीटते रहते हैं। परन्तु जब हम वेदों-स्मृतियों और पुराणों और इतिहासों तक में रोचक भाषा अलङ्कारों का प्रयोग और परिमार्जित शैली का प्रदर्शन पाते हैं, जिनके उदाहरण हम विस्तार-भय से देने में असमर्थ हैं तो कोई कारण नहीं कि हम उन्हें साहित्य के दायरे से बाहर कर दें। ज्योतिष, आयुर्वेद, कोष आदि विषयों की ग्रन्थ-रचना में भी सुन्दर-सुन्दर छन्दों, रमणीयाथे प्रतिपादक शब्दों, सगुण और सालङ्कार भाषाओं का चमत्कारपूर्ण विन्यास होते हुए भी उन्हें साहित्य की सीमा से बाहर करने का कोई भी कारण नहीं है। रही रस-भाव-रसाभास-भावाभास-भावोदय-भावशान्ति-भावसन्धि-भावशबलता-वस्तुव्यंग्य-अलङ्कारव्यंग्य आदि की बात तो अभिव्यञ्जनपटु और रीतिकुशल कलाकार की कृति में ये बातें भी दुर्लभ नहीं हैं।

हमारा मत है कि आठ या नौ रसों, तँतोस या परिगणित भावों का अनु-सन्धान भरत आदि के द्वारा जो किया गया था वह साहित्य के क्षेत्र में प्राथमिक पटना थी। दोष-गुण-अलङ्कार तथा उपर्युक्त विषयों की अथ वही नहीं रही है। भावशबलता तो आप भरतादि के समय में भी देख चुके हैं। यद्यपि वहाँ 'पूर्वपूर्व-भावोपमर्देन उत्तरोत्तरभावोत्पत्तिः' ही भावशबलता थी, परन्तु अथ तो सय वस्तुओं के मिश्रण से तारतम्य को लेकर इतनी सङ्कीर्णता हो गयी है कि उनका विवेचन और तदनुकूल साहित्य निर्माण का एक विशाल क्षेत्र और तैयार हो जाता है। कुशल कलाकार ज्योतिष, आयुर्वेद आदि सभी अङ्गों में उनका उपयोग कर सकता है।

सुतरां प्रभुसम्मित, मुद्गत्सम्मित और कान्तासम्मित इन तीनों रूपों में विभक्त शब्द ब्रह्म के समस्त प्रपंच को ही हम साहित्य शब्द से बोधित करने को तैयार हैं; और हमारे इस मत को पुष्टि "साहित्य परिपद्, संस्कृत सम्मेलन, आयुर्वेद सम्मेलन, कवि सम्मेलन, संगीत सम्मेलन, राजस्थानी सम्मेलन' आदि उप-सम्मेलनों से युक्त 'साहित्य सम्मेलन' जैसी संस्थाओं की योजना से हो जाती है। क्योंकि वहाँ एकत्र होकर हम कुछ तुफानदियों का ही विचार नहीं करते परन्तु साहित्य के उपर्युक्त सभी अङ्गों का विचार किया करते हैं।

अब आप जान गये होंगे कि साहित्य क्या वस्तु है और मानव जीवन के सामाजिक मानव जीवन बनाने के लिए साहित्य की कितनी बड़ी आवश्यकता है। वस्तुतः साहित्यगून्व जीवन मानवजीवन ही नहीं है। इस अभिप्राय को महात्मा,

...ने विन शर्तों में अधिभूत किया है वे मुने

...-विहीनः  
पद्यः प्रस्तावनाहीनः ।

...सादे वादमय या समस्त शब्द प्रयोगः

...एसा है जो अलग-अलग एक-एक निबन्ध की

...य में भरत मुनि से लेकर आधुनिक लेखकों

...एवं गहन विवेचन किया है । उन्हें ही पंडित

...हैं और नवीन विषय लिखने के लिये अपना

...में अधिक कहने के लिए उनके समय से

...विषय में संकष्टों वार विषयों होकर अ

...को अलंकार शोख का खय गंभीर अथ

...को जानना चाहिये ।

...की ईर्दग्री

...विक्रम रूप पर ही ध्यान देने की आवश्यक

...राजकीय सहायता की निदान आवश्यकता

......याम हीती है, वह अच्छी तरह पढ़नी

...है । उसमें मनचले लोगों की मनमानी

...पानी है एवं उसका खरूप सुन्यवस्थित एवं

...हीता चला जाता है । जहाँ इस तरह

...सर्त कृष्ण परिपद, इन भावों का निरन्तर

...जय तक राजकीय अथवा परिपदों का

...सुख हीता रहा तब तक साहित्य

...क्या राजभाषा सभी के लिए यह बात

...है, पठनात्ता: समुच्चयः अथवा

...में हुआ करता है । भारतवर्ष में प्रत्येक

...सामान्य और विर्यति लोकहितार्थिनी

...में सुलोपयोग के अतिरिक्त

...कृत्य ही क्या रहे जाता है । वस !

बाध और उच्छृंखल विलासिता का यहाँ भी आरम्भ हुआ। जहाँ समर्थ लोगों ने अपने सुख और विलास की सामग्री जुटाने के लिए प्रयत्नशील बनना पड़ता था, वहाँ उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग बने हुए अन्य लोगों को भी उनसे कुछ कम चिन्ता नहीं थी। उसी समय केवल चाटुकार “केवल कवयः कपय” कहलाने वाले लोगों का दुर्भाव हुआ जिन्होंने कुछ बीघों के भूस्वामियों की और सीधामात्र दे देने वाले नियों की ऐसी-ऐसी स्तुतियाँ की हैं कि जिन्हें देखकर भगवती सरस्वती फूट-फूट कर रो पड़ती हैं। ज्ञान-विज्ञान और संस्कृति के घोर शत्रु इन लोगों ने जिस प्रकार सरस्वती के केश लुब्धित किये हैं और जिस प्रकार के आघात सभ्यता एवं संस्कृति पर किये हैं, वे सिकन्दर, चाबर, चंगेज खाँ, तैमूरलंग और नादिरशाह के नबिक अत्याचार से किसी प्रकार भी कम नहीं हैं।

### संस्कृति पर आघात

चिकित्सा शास्त्र का यह सर्व-मान्य सिद्धान्त है कि प्रत्येक जीवन में एक ग निवारिणी शक्ति होती है जिसे ‘रोगक्षमता’ या इम्यूनिटी कहते हैं। जब तक यह शक्ति विद्यमान रहती है तब तक कीटाणु अथवा अन्य वाहरी कारणों का शरीर पर कोई रोगारम्भक दुष्प्रभाव नहीं होने पाता। परन्तु जब इस ‘क्षमताशक्ति’ का अभाव हो जाता है तब कोई भी कीटाणु शरीरपर अपना प्रभाव कर देता है। शरीर की ही तरह यह बात समाज, देश, जाति के लिए भी लागू होती है। अपनी सभ्यता और संस्कृतिमें अपने देश और समाजमें जबतक हमारी अटूट धृष्टा बनी रही तब तक हमारी उन्नति का प्रौढ प्रतापी प्रभाकर मध्याकाश में तपता रहा। परन्तु अब से पूर्वकथित केवल कवि-कवियों ने यहाँ चीत्कार मचाना गुरु क्रिया और सभ्यता के अङ्गों में नलक्षित एवं दन्तक्षतो की चाड़ गुरु की तर से ही हमारा समाज और देश पतनोन्मुख हो गया। वे वीर जो शेरों के जबड़े चोर देने की क्षमता रखते थे नीलोटल ड्रॉ से विनिस्त शिव शरों से विद्र होने लगे। जो और फराल काल ब्याल के फणों की पैरो से कुचल सकते थे वे कानिनियों की अलक गिनियों से या शशाश फणों से दुम दवाने लगे। केवल कवियों का अकण्ड अण्ड यही तक समाप्त हो जाता तो भी हमें कोई समालोचना का अवसर नहीं था। परन्तु जब हम इन नृकुंसी के इस भीषण आक्रमण को देखते हैं जिससे हमें हम और धाराध्यदेव कुछ नहीं बच सके, तब हमारे अन्तरात्मा बरबस तलमिला उठती है। आप कहेंगे कि यह किस प्रकार कवियों को मुठेर में तलमिला दे रहा है। क्या इस विषय में कोई प्रमाण भी दे सकता है? इनके





इन गाथाओं को वाग्देवतावतार भट्ट मम्मट ने व्यङ्ग्यार्थप्रधान उत्तम काव्य के उदाहरण रूप में रखा है। दूसरी गाथा का व्यङ्ग्यार्थ इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है:—

—“अत्र हि हरेर्दक्षिणनयनस्य सूर्यात्मकता व्यज्यते, तन्निर्मोलनेन सूर्यास्त-समयः, तेन च पद्मस्य संकोचः, ततो ब्रह्मगः स्थगनं, तथा सति गोप्याङ्गस्यादर्शनेना-निर्यन्त्रणं निषुवन विलसितम्॥” संस्कृतज्ञ सज्जनों के सामने इन शब्दों का और अधिक भाव खोलने की आवश्यकता नहीं है। कितना फूरर, कितना यीभत्स, कितना गंदा चित्रण है यह ? ऊपर से तुरां यह है कि साहित्य की उष्य पुस्तकों में भी ऐसे श्लोक उद्घृत हैं। हम कानून के भय से हमें परीक्षार्थी विद्यार्थियों को ऐसा गन्दा साहित्य पढ़ाना पड़ता है। यदि हमारा हृदय विद्रोह करने को उतावला हो उठता है तो हमें वाग्देवतावतार की दुहाई देकर बलात् विवश कर दिया जाता है।

क्या इस प्रकार स्वयं अपने आराध्य देव अपनी सभ्यता, संस्कृति एवं धर्म का उपहास करते हुए हम दूसरे लोगों और विधर्मियों के आक्षेपों और आक्रमणों का उत्तर दे सकते हैं ? कभी नहीं ! मैं तो यह समझता हूँ कि धीरे-धीरे, नवीन नवीनतर और नवीनतम साहित्यस्रष्टाओं में जो अपनी संस्कृति के प्रति जो शिथिलता खने को मिलती है उसका कारण इन्हीं आदर्श बने हुए गन्दे महारथियों की काली करतूतें हैं।

### प्रज्ञभाषा

संस्कृत और प्राकृत के समान हमें वर्तमान हिन्दी की मूलभूत प्रज्ञ भाषा से भी इतनी ही शिकायत है। प्रज्ञभाषा के लेखकों ने साहित्य में कम गन्दगी नहीं घुसेड़ी है। चराचरनायक-पतितरावन-विद्वेषभावन भगवान् श्री कृष्ण को इसी भाषा के लेखकों ने ही तो एक भ्रष्टचरित्र-कामुक के रूप में चित्रित कर अष्ट-सष्ट लिख मारने के लिये लोगों का मन बढ़ाया है।

जब उनके सामने इस प्रकार की पोल और सुला मैदान पड़ा हुआ है तो फिर उनके धागे पढ़ने में रकावट किस घात की है ? प्रगतिवाद, विनारावाद, विश्ववाद, नष्ट-भ्रष्टवाद और कूड़ा-कपटवाद आदि की दुहाई देते हुए यदि वे कष्ट करने के लिए प्रवृत्त होते हैं तो आश्चर्य क्या है ?

### अचिन्त्यार्था

हमारा यह आशय नहीं है कि श्रद्धारसप्रधान रचनाओं का स्रष्टा हूँ—



कवि की उपर्युक्त प्राचीन उक्ति आज भी हमारे लिए हमारे साहित्य के लिए ज्यों की त्यों लागू हो रही है। आज जिसके जीमें आता है वही कलम कुठार लेकर साहित्य कलन्दरुम की जड़ें काटने को तुल जाता है। बरसाती कीड़ों की तरह इन नवीन साहित्यिकों के झुण्ड के झुण्ड आपको नगर-नगर ग्राम-ग्राम में देखने को मिल जाएंगे। अजीब फैशन, अद्भुत रुचि, अनोखा आचरण, बेढंगो रपतार, बेतालियों की सी धुन का-सा उत्पात। किसीका नाम 'अश्वल' किसी का 'चश्वल' किसीका 'चखरीक' किसीका 'बेढव' किसीका 'कुन्तल' किसीका 'निश्शङ्क' ! क्या कहना है इन विभिन्न पुच्छधारी जीवों की बहार का ! ये चले हैं अपनी कृतियों से भारती के भाण्डार को भरने और साहित्यपाथोधि में नई-नई रचना तरङ्गिणियाँ बहाने !

कोई अपनी कृति को 'लहरी' नाम देकर प्रकाशित करता है तो कोई 'चरङ्गिणी' कोई 'वीणा' कोई 'तन्त्री' कोई 'दिल के अरमान' निकालता है तो कोई दिल के फफोले फोड़ता है, कोई 'मंकार' प्रकाशित करता है तो कोई 'उद्गार'।

अभी क्या बिगड़ा है। अभी तो 'किट्टी' 'गीढ' 'सिंघाण' 'धुत्कार' खंखार, प्रसाव, उधार तक का प्रकाशन देखना हमारे बदनसीब में और बढ़ा है। हम पुप-चाप सारी बातें देखते जाएंगे और खून के आसू पीते जाएंगे। यह तो हमारी आदत ही है। परन्तु जोर भी क्या ? आज शासन पराया, सभ्यता पराई, स्ट्रेञ्ज पराया और प्रेस पराया। हमारे हाथ में है ही क्या ? किसी सभा सोसाइटी में हम घोड़े कि जबरदस्तो चुर रहने को, बैठ जाने को और आकारा में उड़ गए दूप राश्यों को वापस लेने के लिए बाध्य कर दिये जाते हैं। लक्ष्यभ्रष्ट होकर कोई भी समाज या देश अपनी उन्नति नहीं कर सकता। जब से इन चुलबुते 'चश्वरीकों' ने कुछ इपर-उपर की बातों में मस्त होकर असली मकरन्द का पान भुटा दिया है, तभी से साहित्य की वास्तविकता जाती रही और हमारा देश पतनोन्मुख हो गया। अन्तराष्ट्रीय परिस्थिति, समय का प्रवाह, दूसरे देशों की प्रगतियाँ, अपने देश की सामयिक आवश्यकताएँ, इत्यादि बातों पर जब कलाकार या साहित्य का ध्यान नहीं जाता, तब तक वह समाज या अपने देश की सेवा नहीं कर सकता।

मध्ययुग के कुछ ऐथ्यारा और आराम लटब राजाओं या भौतिकों को प्रसन्न करने के लिए कुछ पापलुस-दुर्कर्म कवियों ने हमारे साहित्य के को कवि-  
नियों के कुच-कब-वर्णन और धात्र  
भी आपको ब वही है

... का प्रयोग किया गया है, आर्य समाज के ...

... का प्रयोग किया गया है, आर्य समाज के ...

“अथवा”

... का प्रयोग किया गया है, आर्य समाज के ...

नष्ट हो गई है, उसके लिए घघ गई कहना सभी को खटकेंगा। परन्तु जब मैंने इस शब्द पर ध्यान दिया और गहरा विचार किया तो मुझे स्त्रियाँ ठीक रास्ते पर मालूम हुईं। मातृलिक व्यवहार में हमारी यह सदा से प्रथा रही है, कि उसके अमातृलिक अंशको मातृलिकपुट से बोला जाय। सौभाग्यचिह्न चूड़ के अमातृलिक-स्वरूप लण्डनके लिए उन्होंने 'वध गया' शब्द इसलिए रखा कि साधारण लोग तो इसे 'वधुवृद्धौ' का मातृलिक रूप समझें पर उच्चारण करनेवाले का आशय 'वर्ष-छेदेने' 'बुढ़ादि का है, देखिए 'वधना' शब्द कैसे साहित्यिक भाव का द्योतक है। हमारी भाषा का अतीत कितना सुन्दर है, इसका ज्ञान हमें इन्हीं शब्दों से हो जाता है।

### 'पधारना'

आने और जाने में हमारे यहाँ समान भाव से इस का प्राचुर्यतः प्रयोग होता है। प्रणयी के लिए उसकी गमन वेला में 'जाओ' शब्द एक तरह अमातृलिक-वाचक है। भला बोकानेरी साहित्यिक अपने प्रेमपात्र को जाओ, जैसा कठोर शब्द क्यों कर कह सकते हैं ? उन्होंने इसके लिए सरल एवं भावमय शब्द रखा, वह यह है, आप किधर 'पाद धारेंगे, आने के समय आप किधर से पाद धार रहे हैं। धाजकल की मारवाड़ी भाषा में आदर के लिए पग धरो, पगलिया धरो इत्यादि वाक्यों का प्रयोग हो रहा है। यह पाद धारण है, पधारना हो गया है।

### 'साम्बरना'

खास्यो ( खादिप्यसि ), जास्यो ( यास्यसि ), करस्यो ( करिप्यसि ) आदि मारवाड़ी शब्द संस्कृत के अतिनिकट हैं। साम्बरना शब्द भी वैसा ही है। पछो से आटा पीसने के बाद आटे को इकट्ठा करने में इस शब्द का प्रयोग होता है, यह सम्बरण शब्द का अपभ्रंश है, जो साहित्यिको का प्रचलित शब्द है।

### "छोरी"

हम लोगों पर एक ऐसा भयङ्कर समय घीत चुका है कि जिसमें हमारी संस्कृति, धर्मनिष्ठता, मर्यादा को ध्वस्त करनेवाले साम्राज्य का द्धत्र रहा। इसका नाम था यवन-साम्राज्य। उस समय सुन्दर बन्धा का जन्म होना दायन दुःख का विषय था; क्योंकि बन्धापहरण प्रेमी यवन नवयुवकों के ऐसे कुपुत्र्य पुर मात्रा में होते थे। प्रधानतः क्षत्रिय वर्ग में सुन्दर बन्धा का जन्म होना पुर ही कष्टदायक था। प्रथम तो क्षत्रिय जाति स्वभावतः स्वाभिमानिनी होती

... की कृपा से ...

... की कृपा से ...

“वर्षा”

... की कृपा से ...

नष्ट हो गई है, उसके लिए बंध गई कहना सभी को खटकेंगा। परन्तु जब मैंने इस शब्द पर ध्यान दिया और गहरा विचार किया तो मुझे स्त्रियाँ ठीक रास्ते पर मालूम हुईं। मातृलिंग व्यवहार में हमारी यह सदा से प्रथा रही है, कि उसके अमातृलिंग अंशको मातृलिंगपुट से बोला जाय। सौभाग्यविधु चूड़ के अममूल-स्वरूप खण्डनके लिए उन्होंने 'बंध गया' शब्द इसलिए रखा कि साधारण लोग तो इसे 'बधुपुट्टो' का मातृलिंग रूप समझें पर उच्चारण करनेवाले का आशय 'बंध-धरेने' 'बु' (दि) का है, देखिए 'बंधना' शब्द कैसे साहित्यिक भाव का द्योतक है। हमारी भाषा का अतीत कितना सुन्दर है, इसका ज्ञान हमें इन्हीं शब्दों से हो जाता है।

### ‘पधारना’

आने और जाने में हमारे यहाँ समान भाव से इस का प्राचुर्यतः प्रयोग होता है। प्रणयो के लिए उसकी गमन वेला में 'जाओ' शब्द एक तरह अममूल-वाचक है। भला बोकानेरी साहित्यिक अपने प्रेमपात्र को जाओ, जैसा कठोर शब्द क्यों कर कह सकते हैं ? उन्होंने इसके लिए सरल एवं भावमय शब्द रखा, यह यह है, आप किधर 'पाद धारेंगे, आने के समय आप किधर से पाद धार रहे हैं। आजकल की मारवाड़ी भाषा में आदर के लिए पग धरो, पगलिया धरो इत्यादि वाक्यों का प्रयोग हो रहा है। यह पाद धारण है, पधारना हो गया है।

### ‘साम्बरना’

खारयो ( खादिप्यसि ), जास्यो ( यास्यसि ), करस्यो ( करिप्यसि ) आदि मारवाड़ी शब्द संस्कृत के अतिनिकट हैं। साम्बरना शब्द भी वैसा ही है। चलो से आटा पीसने के बाद आटे को इकट्ठा करने में इस शब्द का प्रयोग होता है, यह सम्बरण शब्द का अपभ्रंश है, जो साहित्यिको का प्रचलित शब्द है।

### ‘छोरी’

हम लोगों पर एक ऐसा भयङ्कर समय घीत चुका है कि जिसमें हमारी संस्कृति, धर्मनिष्ठता, मर्यादा को ध्वस्त करनेवाले साम्राज्य का द्धर रहा। उसका नाम था यवन-साम्राज्य। उस समय सुन्दर बन्धा का जन्म होना दारुण दुःख का विषय था; क्योंकि बन्धापहरण प्रेमी यवन नवयुवकों के ऐसे कुसृत्य पशुर मात्रा में होते थे। प्रधानतः क्षत्रिय वर्ग में सुन्दर बन्धा का जन्म होना बुरा ही कष्टदायक था। प्रथम तो क्षत्रिय जाति स्वभावतः स्वानिमानिनी होती





## साण्ड

अण्डे: सहित: साण्डः। अण्डकोप सहित को सांड कहते हैं। कुंये या गाड़ी में जुतनेवाले धैल के अण्डकोष वेकार कर दिये जाते हैं और इसके पूर्ण रहते हैं।

## विजार—( गू० पी० )

विशिष्टो जारः-विजारः। जार शब्द का अर्थ स्पष्ट है, यह गो-जाति के लिए विशिष्ट जार है।

## आङ्किल

क्योंकि इस पर राजकीय आक्षा से अङ्क लगाये जाते हैं। इसलिए यह अङ्कित है, इसी का अपभ्रंश आङ्किल है।

## हण

यह शब्द प्रचलित हिन्दीभाषा के अभी शब्द के अर्थ में प्रयुक्त होता है बाँकनेरी इसे विशेषतया व्यवहार में लाते हैं। इसका मूल 'अधुना' है। बाँकनेरी भाषा में न को ण तथा आदिम स्वर का लोप देगा जाता है। जैसे धनो, धण, आदि। अधुना शब्द ज्यादा गिरा हुआ हण के रूप में है।

## ऐसी ही अन्य शब्दावली

पीहर—पीघर=पितृगृह।

भाभो-भौजाई,=भातृभार्या-भ्रातृजाया।

एशो=श्वर।

बीन=विशिष्ट दनः=बीनः।

गणदासा=रणदासा, ( रणदानस्यति कृत्वेति )

सुरपा=धुपपाः, धुपपाद्।

भाङ्कलका—यह अनुकरण शब्द है। प्रातः जिन दिनों प्रत्येक घर में

भगवान् की आरती होती थी, और उसमें वाद्य-विशेष से जो 'न्ही-न्ही' शब्द प्रकट

होया था, तब से यह नाम प्रातः ब्राह्ममुर्त के सूचक रूपमें पड़ा। न्ही-न्ही शब्द

क.वि-भादत्ते असौ ॥

हागर—हाग—यष्टिं राति भादत्तेऽसौ।

गुवाड़—गवार, मकानों के आगे, गोबों के दूने की जगह।

पाखाळ—पय.खाळ। अर्धसंस्कृत शब्द है।

प.प्यो—पुष्पिः।

जेलो—जयिनी।

रान्त'खो—दन्ताखलो, आदि आदि।

# संस्कृत-सहित

७०—कविशिव मरुतमरण प्रसंग श्लोका

साहित्यशास्त्र, काव्यकला, साहित्यव्युत्पत्त्या,

राजगुरु शिवानंद (उद्देश्यप्रधान)

आज का युग विप्लव का युग है। प्राचीन आर्यो पुरुषों एवं आर्यों के  
की जिना नव यथावत् एवं आर्य से मानवजात युग समाप्तप्राय है  
संस्कृत के महत्त्व की यथार्थ समीक्षा जानने हैं, परन्तु उसे भी आज प्रमाणों  
परने की आवश्यकता है।

वर्तमान समय में विद्वानों भी आशय प्रकटित हैं, उन सब में संस्कृत ही  
है—यह कथन अविशयोक्ति नहीं है। मैं तो यह कहने में भी संकुचित नहीं  
कि संस्कृत ही समाप्त भाषाओं का उद्देश्यप्रधान है। इन कथनों की आगे  
सिद्ध किया जाएगा।

संस्कृत शब्द, सम, पूर्वक, क, पाणि में, क, प्रत्यय के जोड़ने से बनता है।  
एवं, परि, अपसर्ग जोड़ने से जब, क, पाणि का अर्थ, भूषण, या, संधार, होता  
है, 'सिद्ध' प्रत्यय होने का नियम रहने से संस्कृत का अर्थ सिद्धत्व या परिपूर्ण  
ही होता है।

हमारे प्राचीन मन्थों में संस्कृत भाषा का संस्कृत नाम बहुत कम मिलता है।  
संस्कृत शब्द का मूल्य वाचिकीय रीतिप्रधान में बलवत् होता है। यथा—  
"यदि यत् प्रत्ययानि विजातिव सन्तानम्।  
शब्दात् सन्तानानां भी संज्ञा भिन्ना भिन्नानि ॥"

महर्षि यास्क और पाणिनि के मन्थों की देखने से यह जाना जाता है कि  
समय में समाप्त लौकिक व्यवहार इसी भाषा से होता था। परन्तु इसे  
न कहकर भाषा नाम से ही संज्ञायित किया जाता था। यथा—  
समय की गति बड़ी विचित्र है। कर्त्तव्य-व्याप्त इस भाषा की प्रयोग सर्व-  
समय की गति बड़ी विचित्र है। कर्त्तव्य-व्याप्त इस भाषा की प्रयोग सर्व-

करने के लिए इसे संस्कृत भाषा के नाम से प्रकटित करें। कर्त्तव्य-व्याप्त  
की अधिकार होने लगा, जब उस समय के विद्वान प्रकृत से इसका अर्थ  
ही कम होने लगा, तथा इस समय-समय भाषाओं के प्रतीक एवं प्र-  
करण के लिए इसे संस्कृत भाषा के नाम से प्रकटित करें। कर्त्तव्य-व्याप्त

महाकवियों द्वारा यह भाषा अपनी कृतियों में प्रयुक्त की गई थी, तथा पाणिनि कुमारदास प्रभृति विद्वानों से परिष्कृत की गई थी।

### संस्कृत नाम की यथार्थता

जो वस्तु पूर्णतया पकी न हो, उसे पूर्ण पक्व न कह कर पच्यमान ही कहा जायगा एवं जो वस्तु पक गई हो उसे पक्व ही कहेंगे। ठीक इसी प्रकार जो भाषा पूर्ण परिष्कृत न हो, उसके धीरे-धीरे संस्कार होते जा रहे हों उसे संक्रियमाणभाषा ही कहा जायगा; क्योंकि वसमें परिवर्तन को अवकाश रहता है। उदाहरण से इसे यों समझिए कि संसार में कोई ऐसी भाषा नहीं, जिसमें १-२ शतक के बाद परिवर्तन नहीं हुआ हो। संस्कृतेतर भाषा के रूप और शब्दों को तो दूर रखिए, उच्चारण में भी कुछ वर्षों में अन्तर आ जाता है। पर संस्कृत की ओर जब दृष्टिपात करते हैं, तब निर्विवाद यह कह सकते हैं कि 'पाणिनि', 'कात्यायन', 'पतञ्जलि' के द्वारा संस्कार करने पर इस भाषा में नाममात्र को भी परिवर्तन नहीं हुआ। अतः सिद्ध हुआ कि वास्तव में यही भाषा संस्कृत, अविष्कृत और परिष्कृत है।

यद्यपि लौकिक संस्कृत के लिए ही संस्कृत शब्द पहले रूढ हुआ था, परन्तु वैदिक संस्कृत को भी लौकिक संस्कृत की जन्मदात्री होने के कारण संस्कृत नाम से सम्बोधन किया जाने लगा।

प्राचीन वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में भेद नहीं, यह नहीं कहा जा सकता, परन्तु इस कथन में कोई आपत्ति नहीं कि दोनों में उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है।

कुछ एक उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है।

(१) युष्मद् एवं अस्मद् की चतुर्थी तथा सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में युष्मे एवं अस्मे रूप होते हैं। यथा:—“अस्मे इन्द्रा वृद्धस्पती” “न युष्मे वाज्रबान्धव” इत्यादि।

(२) लोट लकार के मध्यम पुरुष के बहुवचन में त, तन, धन, एवं तान् प्रत्यय होते हैं, यथा:—“शृगोत प्रावाणः सुनुतन यतिष्ठन कृणुतात्”।

(३) तुमुन प्रत्यय के अर्थ में 'ध्वै' 'से' आदि प्रत्यय होते हैं—यथा:—“पिबध्वै”, “जीवसे” इत्यादि।

इस प्रकार के उदाहरणों की संहिता ग्रन्थों में अल्पता नहीं। इस प्रकार के और भी बहुत से प्रत्यय होते हैं, जो कि सिद्धान्तबोधुशी यो स्वर वैदिक प्रक्रिया प्रकृत प्रक्रिया के अध्ययन से जाने जा सकते हैं।



वही विश्व की समृद्ध तथा सबध्रेष्ठ भाषा बहुत से मनुष्यों द्वारा समझी जाती है परन्तु संस्कृत के साथ तुलना करने से ज्ञात होगा कि अंग्रेजी संस्कृत के सामने कुछ नहीं। पहले अंग्रेजी की लिपि पर ध्यान दीजिए। अंग्रेजी की लिपि में २६ अक्षर हैं, उससे हमारी लिपि के त-थ-द-ध-ण, का तो उच्चारण किसी हालत में भी नहीं हो सकता, तथा ङ-ञ आदि के उच्चारण में भी इसी कठिनता का सामना करना पड़ता है। च-छ-झ आदि बहुत से अक्षर ऐसे हैं, जिन्हें बनाने के लिए अंग्रेजी के एकाधिक अक्षरों की शरण लेनी पड़ती है तथा उच्चारण में भी बहुत अन्तर पाया जाता है। संस्कृत में उस अक्षर का उच्चारण हर हालत में वही होता है, जो उसके लिए नियत किया गया है, परन्तु अंग्रेजी में ऐसा नियम नहीं। जिस शैली से एक शब्द का उच्चारण होता है, उसी शैली द्वारा वैसे शब्दों का उच्चारण वैसा नहीं होता। यथा :—But और Put.

तथा कहीं किसी अक्षर का उच्चारण नहीं होता, यथा—Knife, Pneumonia कहीं निरर्थक अक्षरों को रख दिया जाता है, यथा—Light, Thought, कहीं अक्षरों के अभाव में ही उस जैसा उच्चारण हो जाता है, जैसे, Pure station इस प्रकार के उदाहरणों की न्यूनता नहीं यहाँ तो फेबल दिव्यमात्र दिखलाया गया है। इस प्रकार की गड़बड़ी इंग्लिश में विद्यमान है। संस्कृत की देवनागरी लिपि में कोई गड़बड़ी नहीं है। देवनागरी लिपि के द्वारा मानव जो भी व्यक्त उच्चारण कर पाता है वह लिखा जा सकता है, परन्तु अन्य भाषाओं में वह सौकर्य नहीं। वृं आदि भाषा भी इसके सामने कुछ नहीं, यह सभी जानते हैं। अब भाषा सौकर्य के विषय में भी कुछ शब्द कह देना अनुपयुक्त नहीं होगा।

संस्कृत भाषा के पाणिनीय व्याकरण की प्रशंसा सभी भाषाओं के विद्वानों ने मुच्छकण्ठ से की है। इसके प्रत्यय-बाहुल्य, धातु-बाहुल्य, समास-रचना एवं वचसर्गों के प्रयोग तथा स्वरपद्धति आदि विषय अपनी तुलना नहीं रखते। इसके प्रत्यय-बाहुल्य एवं धातु-बाहुल्य द्वारा अपने मनोभावों को व्यक्त करने में विद्वानों सुविधा प्राप्त होती है उतनी अन्यत्र नहीं।

एक विशेषता इस भाषा की यह भी है कि उसमें वाक्य के शब्दों को उल्टे-बल्टे कर देने से भी कोई आपत्ति नहीं उठती जैसे "रामो रावन् इन्ति" इस वाक्य को "रावन् रामो इन्ति" "इन्ति रामो रावन्" किसी तरह भी बदल देंगे परन्तु अर्थ वही होगा कि 'राम रावण को मारता है।' इतर अंग्रेजी में "The father beats the son" इस वाक्य को "The son beats the father"

... तो अर्थ ही दूसरा होगा। यथा Beats the son the father

... जो अर्थ ही नहीं होगा। करना चाहिए, इस अर्थ के वाचक, 'दूसरा'

के लिए "It is to be done" इस अर्थ शब्दों को मिलाने होगा।

... द्वारा अनेक शब्दों को संक्षिप्त करने की शक्ति होगी, यथा 'संक्षिप्त'

सही है। यद्यपि अंग्रेजी में भी इस अर्थ आभास मिलता है, परन्तु वह

... नहीं। पद्यवाचक शब्दों की बहुलता होगी यथा 'विद्यमान

... शब्दों में पद्यवाचक शब्दों की बहुलता होगी। इसी शब्दों

... होने के कारण संक्षेप में विन-विन शब्दों में अनेक प्रकार की

... इसनी सरलता के साथ ही सही है। इस शब्दों के कर्तव्यों की

... कविता करने में कविनी कठिनता को अनुभव करना होगा यथा

... है।

### संक्षेप ही सब शब्दों की उद्देश्य स्थान है

... यथा भारतीय शब्दों की जननी है यह तो निर्विवाद ही है परन्तु

... शब्दों की भाषा में संक्षेप से बहुत कुछ प्राप्त कर चुकी है। यहाँ,

... शब्दों की भाषा में संक्षेप से बहुत कुछ प्राप्त कर चुकी है। यहाँ,

... शब्दों की भाषा में संक्षेप से बहुत कुछ प्राप्त कर चुकी है। यहाँ,

... शब्दों की भाषा में संक्षेप से बहुत कुछ प्राप्त कर चुकी है। यहाँ,

... शब्दों की भाषा में संक्षेप से बहुत कुछ प्राप्त कर चुकी है। यहाँ,

... शब्दों की भाषा में संक्षेप से बहुत कुछ प्राप्त कर चुकी है। यहाँ,

... शब्दों की भाषा में संक्षेप से बहुत कुछ प्राप्त कर चुकी है। यहाँ,

... शब्दों की भाषा में संक्षेप से बहुत कुछ प्राप्त कर चुकी है। यहाँ,

... शब्दों की भाषा में संक्षेप से बहुत कुछ प्राप्त कर चुकी है। यहाँ,

... शब्दों की भाषा में संक्षेप से बहुत कुछ प्राप्त कर चुकी है। यहाँ,

... शब्दों की भाषा में संक्षेप से बहुत कुछ प्राप्त कर चुकी है। यहाँ,

... शब्दों की भाषा में संक्षेप से बहुत कुछ प्राप्त कर चुकी है। यहाँ,

जोरा को एक अपूर्व लहर दौड़ा दी हो, युद्ध में पराहमुख, परमुखापेक्षी नपुंसकों को जिस भाषा के वाक्यों ने शत्रुओं के हृदय कंपा देने वाले बना दिये हों; उस भाषा को मृतभाषा कहकर कलङ्कित करना क्या अन्याय का कदम नहीं है ?

( ३ ) जिसके काव्यों की मधुर पदावली मानव हृत्तन्त्री के तारों में एक अपूर्व राग का सृजन करती हो, निजप्रेयोवियुक्त प्राणिमण्डल के तात्प्यमान हृदय को कल्पना के सजीव आनन्दोपवन में घुमाती रहती हो, जो नश्वर जगती के शोकाकुल भार्वा से खिन्न हृदय-प्राणियों को शान्ति के उस निकेत की ओर ले जाने वाले ग्रंथों से भरी पड़ी हो, जिसमें कर्मयोग का सन्देश देनेवाले गीता जैसे अमूल्य रत्न हो, उसे मृतभाषा कहना क्या अपनी आत्मा की हत्या नहीं है ?

( ४ ) जिस भाषा के पुनीत प्राङ्गण में भारत के महामहिम कवियों ने सोहास क्रीड़ा की, जिस भाषा के सुरभिमय उद्यान में भावुक रसिक-मण्डल ने सानन्द विहार किया, जिस भाषा की सकल्लोका कल्लोलिनी में शोकाकुल जगती ने सानन्द अवगाहन किया, जिस भाषा के उत्तुङ्ग हिमाचल पर लेखकचन्द्र ने समोद विहार किया, उसी भाषा को मृतभाषा कहकर सम्बोधित करना क्या अपनी जिज्ञा को कलङ्कित करने का भूठा प्रयास नहीं है ?

( ५ ) जिसकी गोद में पलकर कालिदास ने संसार को एक नया सुप्त दिया जिसके प्रेम भरे आश्वासनों द्वारा उल्लसित श्री हर्ष ने संसार को नैपथ्य चरित्र जैसी देन दी, जिसकी दुलारभरी धपकियाँ पाकर बाण ने गद्य-काव्य का आदर्श स्थापित किया, जिसके मधुर वचनों से आनन्दित माघ एवं भारवि ने संसार को अपने प्रति आकृष्ट किया जिसकी भव्य भावना से भावित भवभूति ने अपनी वाणी से जगती को आनन्दित किया, क्या उसी पुनीत भाषा को मृतभाषा कहे गन्दे शब्द से पुकारना अपनी विज्ञता को तिलाञ्जलि देना नहीं है ?

( ६ ) जिसमें वेद, पुराण, उपवेद, उपपुराण, इतिहास, स्मृति, वेदान्त पद-परान, काव्य, नाटक, अलङ्कार शास्त्रोंके अपूर्व ग्रन्थ निधिरूप से विराजमान हैं, उसे मृतभाषा की उपाधि देना क्या बौद्धिक दिवालियापन नहीं है। समृद्ध मृत-भाषा नहीं है ! कभी नहीं !! त्रिकाण्ड में भी नहीं !!!

मृत भाषा के दो अर्थ होते हैं, एक तो मरे हुए प्राणियों की भाषा दूसरे मरें हुए भाषा। पहला अर्थ तो प्रत्येक भाषा के लिए पटित हो सकता है। क्या मरे हुए प्राणियों, उर्दू आदि मरे हुए प्राणियों की भाषा नहीं है ? दूसरा अर्थ तो किसी शब्द से भी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि भाषा कभी मरती नहीं। जो अक्षरों की

संक्षिप्त ध्यान करना आवश्यक नहीं होगा।

आदि मंत्र एवं इनके अन्तर्गत मंत्र लिखित हैं। अथ संक्षिप्त साहित्य  
, १८ अक्षरों, महाभारत, पञ्चरात्र, धर्मशास्त्र, काव्य, नाटक  
रचना। संक्षिप्त साहित्य में चार वेद, चार उपवेद, छंदशास्त्र,  
इसका विभाग करा हुआ है, जो भी कोई साहित्य इसकी तुलना करने  
को इच्छता मालूम करना क्या इच्छा है? यद्यपि  
में सचिद से लेकर आज तक अज्ञान विज्ञान प्रकाश करते रहे  
आज समुद्र के तल भाग का अन्तर्गत नहीं जाना है। अतः विज्ञान  
का अन्वेषण, संशोधक विद्वान् संकष्टों वर्षों से करते आ रहे

### संक्षिप्त साहित्य की अभावता

का शोध होता है। प्रस्तुत लेख में इस व्यापक अर्थ को ही लिखा  
में काव्य नाटक अलङ्कार का ही शोध होता है। व्यापक अर्थ में  
शब्दों के ही अर्थ होते हैं, एक संक्षिप्त और दूसरा व्यापक।  
इसके बाद साहित्य शब्दों को ही अधिक व्यापक समझा  
शब्दों के अर्थ में वाङ्मय शब्दों तथा इसके बाद काव्य शब्दों का  
है कर्त्तव्य।" इस कलहण के प्रथम से पहले नहीं मिलता है। सर्व-  
संज्ञित कलाविहीनः" इस पूर्ववृत्ति के तथा "साहित्यप्रवाधाद्विषमस्यनोत्पत्तिः  
"ने भी कोई अभाव नहीं। हमारे संक्षिप्त साहित्य में साहित्य शब्द  
के व्यापक हो जाते हैं। फिर भी साहित्य शब्दोंकी व्युत्पत्ति की  
प्रतीति किसे है, या तो वे काव्यों पर घट जाते हैं, अथवा काव्य  
है। यद्यपि साहित्य शब्दों का अर्थ अतः एक नहीं मिल सका है, जो  
एतन् (एतन्) प्रथम जगत् पर प्रवर्तित है। जिसका अर्थ द्विविधाका  
पर भी विचार कर देना अनुपयुक्त नहीं होगा। साहित्य शब्द-  
भाषा का महत्त्व, अर्थ, वैशिष्ट्य आदि प्रवृत्ति विषय में है। अथ

### साहित्य शब्दपर विचार

करने का अर्थ प्रकाश है ॥  
अन्वय है। सर्वथा अज्ञान है। अज्ञान है। अज्ञान है ॥ अथ  
है, जो प्राणिमण्डलके इन्द्रिय में उजासिली प्रकृति ही उसे प्रकाश  
और प्रकाश में जीवन का शब्द प्रकृति ही, जो भीक्यों में जीवन



## वेद

संस्कृत-साहित्य में वेदों जैसी अपूर्व निधि विद्यमान है। वेद ही संस्कृत-साहित्य के सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। संसार के ऐतिहासिक विद्वान् इस बात को एकमत से स्वीकार करते हैं, कि ऋग्वेद से पुराना ग्रन्थ कहीं किसी साहित्य में भी नहीं है। वेद अनादि एवं अपौरुषेय हैं, ऐसा हिन्दू-संसारका विश्वास है। वेद सबकुछ सभ्य संसार के ज्वलन्त रत्न हैं। इनमें जितना आलोक है उतना कहीं भी नहीं। हिन्दू-संसार का कोई भी संस्कार बिना वेदमन्त्रों के सम्पन्न नहीं होता।

## उपवेद

चारों वेदों के चार उपवेद भी होते हैं—यथा आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद और अथर्वशास्त्र। उपवेद भी मानव-समाज के अत्यन्त काम की वस्तु हैं।

## आयुर्वेद

मानव-जीवन की ही नहीं, प्राणिमात्र की एकमात्र उपकारक विद्याका नाम आयुर्वेद है। स्वस्थ पुरुष के स्वास्थ्य-रक्षण एवं रूग्णकी व्याधि-निवारण के उपाय इस विद्यामें पूर्णतया समुल्लिखित हैं। इसके आठ अङ्ग हैं—१ शल्य, २ शालाक्य, ३ काय-चिकित्सा, ४ कौमार भृत्य, ५ अगदतन्त्र, ६ भूतविद्या, ७ रसायन, ८ वाजीकरणतन्त्र। इसके प्रत्येक अङ्गपर महर्षियों की पृथक्-पृथक् संहिताएँ थीं। पहले पहले इस शास्त्र का उपदेश ब्रह्माजी ने किया। धीरे-धीरे समस्त भूमण्डलपर इसका प्रचार होता गया। प्राचीन कालमें इसके भिन्न-भिन्न अङ्गोंके भिन्न-भिन्न आचार्य होते थे। इस समय इस शास्त्रके कई अङ्ग विलुप्तप्राय हो चुके हैं। प्राचीन संहिताओं में केवल दो ही उपलब्ध हैं—पहली चरक तथा दूसरी सुश्रुत। आयुर्वेद लाखों वर्ष पहले भी पूर्ण विकसित था। इसके रसायन नामक अङ्गमें तो इतने आश्चर्यजनक आविष्कारोंका वर्णन है कि जिन्हें सुनकर आजके वैज्ञानिक हैरान हैं। इस शास्त्रमें चिकित्सा-पद्धति का जितना सुन्दर वर्णन है उतना संसार की किसी विद्या में नहीं। आज भी भारत की अधिकांश जनता का स्वास्थ्य आयुर्वेद पर ही अवलम्बित है। यह बड़ा ही गूढ़ शास्त्र है—केवल वात-पित्त-कफके सिद्धान्तपर अवलम्बित है। इतना संक्षेप किसी अन्य चिकित्सा-प्रणाली की बल्बना के भी बाहर है।

## धनुर्वेद

प्राचीन भारतमें धनुर्वेदका प्रचुर प्रचार था, या यों कहिए कि समस्त सैन्यशास्त्र इसको छत्रपर ही अवलम्बित थी। इसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी ही है। महानारकमें अर्जुन आविष्कारोंका वर्णन मिलता है, जिनके आगे आजके वैज्ञानिक



## व्याकरण

यह संस्कृत-साहित्य का महत्त्वपूर्ण विषय है। व्याकरण बहुत से हैं, परन्तु पाणिनीय व्याकरण उच्च कोटि का है। इसके नियम एवं आठों अध्यायों का क्रम देख कर कानून के बड़े से बड़े विद्वान् को हैरान होना पड़ता है। इस व्याकरण की यह भी विशेषता है कि इस शब्द का अर्थ ऐसा क्यों होता है। भोजन का अर्थ भोजन क्यों होता है, यह पाणिनीय व्याकरण बतला सकता है, परन्तु 'कूड' का अर्थ भोजन क्यों हुआ, यह अंग्रेजी ग्रामर कभी नहीं बतला सकता। इसका विवेचन पहले भी कर दिया गया है।

## निरुक्त

वेदार्थ जानने का साधन है। इसका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ यास्क का निरुक्त है। व्याकरण द्वारा शब्द-लक्षण-परिज्ञान होता है। इसके द्वारा शब्दार्थ निवचन-परिज्ञान होता है। यह भी असाधारण विषय है।

## ज्योतिष

विषय संस्कृत-साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। संसार के भूत-भविष्य का ज्ञान प्रत्यक्षद्रष्टा की तरह करा देना ज्योतिष का ही काम है। फिर भी विशेषता यह है कि ६ प्रह एवं १२ भाव में ही सब कुछ सीमित कर रखा है। फलित शास्त्र बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। सभी प्राणियों की कुण्डलियों में ६ प्रह एवं १२ भाव विद्यमान होते हैं, परन्तु फल ज्योतिषी एक-सा नहीं बतलाते। इससे इसकी सूक्ष्मता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इसके गूढ़ अन्वेषन को देखकर संसार चकित है।

## छन्द

यह भी सभी शास्त्रों से एक विलक्षण महत्त्व रखता है। इसे वेद का पाद कहा गया है। यह समस्त वाङ्मय का आधार माना जाता है। छन्दों के विषय में यों कहा गया है कि बिना छन्द के कोई वाणी नहीं निकलती। देवता कृपु से बचने के लिए वेदमन्त्रों में प्रविष्ट हुए तथा छन्दों ने उन्हें बचाया। अग्नि में आर्घ्यादित करने के कारण इसका नाम छन्द पड़ गया। यह छन्दोग्यो-पनिषद् का प्रमाण है। एक प्रसिद्ध वचन के भाष्य में बतना आर्घ्यन नहीं होता, जिसना कि एक साधारण गवैये के गान में होता है। यह छन्दों का ही महत्त्व है। छन्द विशेष कर भवण-प्रिय होते हैं। जिधर से गीत की ध्वनि जाती है, वर ही वान विशेष ध्यान देते हैं। मनोभावों को विशेष तन्त्रित करने



तियों में उल्लिखित हैं। मनुस्मृति भारत की ही नहीं, संसार की आदर्श वस्तु है। मनुस्मृति में जो विधान है, वही या उसका कुछ विकृत रूप संसार के विधान में है, हिन्दू-संसार को स्मृतियों की पग-पग पर आवश्यकता है। स्मृतियों के साथ-साथ मंत्र भी धर्मशास्त्र के अन्तर्गत हैं। पारस्करादि गृह्यसूत्र बहुत मान्य हैं।

### काव्य

यह संसार की सजीव एवं रसमय वस्तु है। सृष्टि के चमत्कारों को देख कर मानव-हृदय में जिन तरङ्गों की उत्पत्ति होती है, उसे ही मनोहर शब्दों में व्यक्त करना काव्य का कार्य है। प्रत्येक प्राणी की प्रवृत्ति जन्म से ही सुखान्वेषण के लिए होती है। काव्य अनायास ही सुख देता है, अतः काव्य को ब्रह्मानन्द-सहोदर कहा गया है। ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के लिए मनुष्य को बड़े-बड़े कष्टों का अनुभव करना होता है। अतीन्द्रिय ज्ञान के माद ही ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है, परन्तु काव्य बिना किसी कष्ट के एक अलौकिक सुख देता है। अतः काव्य के प्रति मानव की प्रवृत्ति सहज ही होती है। काव्य के कानों में पड़ते ही आनन्द की एक लहर हृदय-सागर में उमड़ पड़ती है। काव्य-स्वाद का अनुभव उसके श्रवण मात्र से हो जाता है। काव्य के अध्ययन से दुःखी से दुःखी प्राणी भी अपने दुःख को भुला सकता है। अन्य शास्त्रों की अपेक्षा काव्य में एक विशेष आनन्द रहता है, यह सभी मानते हैं।

संस्कृत-भाषा में जितने सुन्दर काव्य है, उतने संसार की किसी अन्य भाषा में नहीं—यह निर्विवाद है। जो सौन्दर्य धी कालिदास एवं श्री हर्ष की भारती में है, वह सौन्दर्य संसार के किसी अन्य कवि की भारती में नहीं—यह सरलतया कहा जा सकता है। काव्य के एक-एक श्लोक में अपूर्व आनन्द एवं उद्वेग रहता है। काव्य के दो भेद होते हैं—दृश्य एवं ध्रुव्य। ध्रुव्य में गद्य, पद्य और मिश्र—ये तीन भेद होते हैं। गद्य के भी कथा और आख्यायिका ये दो भेद हैं। पद्य के महाकाव्य, एण्डकाव्य एवं कोश-काव्य ये तीन भेद हैं। मिश्र काव्य के चम्पू, विट्ठल एवं ध्रुव्य—ये तीन भेद होते हैं। संस्कृत में गद्यकाव्य पद्य काव्य—ये दो भेद हैं। काव्य-सौन्दर्य के २-४ उदाहरण नीचे दिये

[ १ ] पद्य-मन्त्र-विधान-शास्त्रां १११

सं अत्रिवाहं हीना हीं इसकी सर्वश्रेष्ठता का प्रमाण है ।

यह प्रथम प्रारंभ में प्रयास ही है । इस बात का सब  
न वाला नाटक संसार में न हुआ, न होगा । "कल्याण नाटक श्रेष्ठ  
अन्य नही । शकुन्तला नाटक संसार का सर्वश्रेष्ठ नाटक है । इसकी  
ही इसका प्रयास ही जाता है । जिसने सुन्दर नाटक संस्कृत-साहित्य  
प्रारंभ-प्रारंभ ही पर भी उपस्थित नहीं रहता, उसे रंगमंच में एक प्रारंभ  
इसमें मानव-मात्र की अपनी और आकर्षक करने की शक्ति रहती है ।  
। बुद्ध, मूल या विद्या, ही ही या प्रथम—नाटक सब की एक ही आनन्द  
स्थान वर्द्धित हुआ है । नाटक में एक विशिष्टता चमत्कार रहता है ।  
जिसने कि दृश्यों की आनन्द प्राप्त करने का । संस्कृत-साहित्य में  
करने की श्रेष्ठता रहती है । नाटक में पाण्डित्य का उतना स्थान नहीं  
रहता है । इस प्रकार के अभिप्राय में सर्वप्रथम घटनाओं का प्रमाण  
ही, परन्तु नाटक में घटना-वर्णन के साथ-साथ एक आनन्दपूर्ण  
रूप काव्यों की कहते हैं । इस प्रकार में सर्वप्रथम घटनाओं का केवल

### नाटक

संस्कृत-साहित्य के काव्यों की समता कही नहीं हो सकती ।  
सकती है । विद्वानों की अभिवृत्ति जित्त किसे उदाहरण नहीं करती ?  
विशेष विवरण ही उतनी है । काव्य में ही ऐसी शक्ति है, जो कि प्रथम  
। इन रत्नों की सुनने ही रोमाञ्च ही उतनी है, इन्द्र कर्तव्य है,  
" जिसने साहित्यिक विद्या है । क्या ऐसी प्रमाण अन्य भाषा में ही

( अतिशय प्रशंसनीय प्रमाण )

- ॥ अत्रिवाहं हीना हीं सर्वश्रेष्ठता का प्रमाण ॥
- [ ५ ] अत्रिवाहं हीना हीं सर्वश्रेष्ठता का प्रमाण ॥
- अत्रिवाहं हीना हीं सर्वश्रेष्ठता का प्रमाण ॥
- [ ४ ] अत्रिवाहं हीना हीं सर्वश्रेष्ठता का प्रमाण ॥

( अतिशय प्रशंसनीय प्रमाण )

- ॥ अत्रिवाहं हीना हीं सर्वश्रेष्ठता का प्रमाण ॥
- [ ३ ] अत्रिवाहं हीना हीं सर्वश्रेष्ठता का प्रमाण ॥

( अतिशय प्रशंसनीय प्रमाण )

- ॥ अत्रिवाहं हीना हीं सर्वश्रेष्ठता का प्रमाण ॥
- [ २ ] अत्रिवाहं हीना हीं सर्वश्रेष्ठता का प्रमाण ॥

इसका भी संस्कृत-साहित्य में विशेष स्थान है। यह बड़े महत्त्व का विषय है। वेदों से लेकर साधारण ग्रन्थों तक का यह महान उपकारक है। राजशेखर ने इसका इतना महत्त्व देख कर ही इसे सप्तम वेदाङ्ग कहा है। भाषा का प्रयोग सभी कर सकते हैं, परन्तु उसमें सौन्दर्य एवं चमत्कार अलङ्कारशास्त्र का धिज्ञ ही कर सकता है। भाषा चाहे गद्यमयी हो या पद्यमयी, उसे आनन्ददायिनी और मनोरञ्जिनी बनाना अलङ्कारशास्त्र का ही कार्य है। अलङ्कार शास्त्र का प्राचीन ग्रन्थ भारत का नाट्य शास्त्र ही उपलब्ध होता है। काव्य को सजाने का साधन ही अलङ्कार शास्त्र है। काव्य की आत्मा के विषय में आलङ्कारिकों में बड़ा मत-भेद है। अधिकांश आलङ्कारिक रस को ही काव्य की आत्मा मानते हैं। नायक-नायिका आदि का सूक्ष्म भेद जितना संस्कृत-साहित्य के अलङ्कार-ग्रन्थों में है, उतना अन्यत्र नहीं।

### कोश

यह भी महत्त्वपूर्ण विषय है। संसार की कोई भी भाषा बिना कोश-ग्रन्थों के बंभित नहीं रह सकती। इस परिवर्तनशील संसार में भाषा का परिवर्तन भी आवश्यक है। प्राचीन वेदों में प्रयुक्त होनेवाले सदस्यों शब्दों का प्रयोग अब नहीं हो रहा है। यदि वैदिक निघण्टु नहीं होता तो आज हम वेदों का अर्थ समझ ही नहीं सकते। शब्दार्थ का बोध कराना व्याकरण के साथ-साथ कोश का भी कार्य है। संस्कृत में विश्वकोश, शब्दकल्पद्रुम कोश आदि महत्त्वपूर्ण कोश विद्यमान हैं।

### उपसंहार

इस प्रकार सर्वाङ्गपूर्ण इस पुनीत भारती को छोड़कर हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन देखने का स्वप्न जो आज भारत के महापुरुष ले रहे हैं, राष्ट्र में स्वप्न ही है। यदि भारतीय मानव-समाज का उपकार हो सकता है तो, इस भाषा से, अन्य से नहीं।

बन्धुतः यही भाषा राष्ट्रभाषा के योग्य है। भारतवर्ष में संस्कृतियों की संख्या कम नहीं यदि आज हम एक मूत्र में आषट्क होकर आवाज बुलन्द करें, तो किसी से शक्ति नहीं है इसे राष्ट्रभाषा होने से रोक सके।